प्राणायाम-विज्ञान और कला

डा० शोजाबुरो ओटेव के 'दि साइंस एंड आर्ट
ऑफ डीप ब्रीदिंग' का हिंदी अनुवाद

अनुवादक
पीतांबरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९३०] [मूल्य ॥)

वक्तव्य

यह पुस्तक डा० शोजाबुरो ओटेब के 'दि साइंस ऐंड आर्ट औफ डीप-ब्रीदिंग ऐज़ ए प्रोफिलैक्टिक ऐंड थीराप्यूटिक एजेंट इन कंज़पूशन' का अनुवाद है। उन्होंने २२ वर्ष की अवस्था में 'यक्ष्मा के विरुद्ध प्राणायाम' नाम की एक पुस्तिका जापानी भाषा में लिखी थी। प्राणायाम के प्रचार के लिये उन्होंने इसकी ७०० प्रतियाँ मुफ्त बाँटी थीं। इस पुस्तिका ने प्राणायाम के पक्ष में जापान में एक लहर सी उठा दी थी। ६ वर्ष के बाद १६१८ में जब वे लंदन की केंसिंग्टन इंफर्मरी में असिस्टंट मेडिकल अफसर थे तो उन्होंने उस पुस्तिका के प्रधान अंशों को लेकर उनके आधार पर तथा उनमें प्रयोगांश को जोड़कर इस पुस्तक की रचना की। इस बीच उन्होंने टोकियो के चैरिटी हौस्पिटल मेडिकल कौलेज के बेक्टिरियो-लौजिकल इंस्टीच्यूट का असिस्टंट, बेगुली सैनिटोरियम, चेशायर का असिस्टंट मेडिकल अफसर तथा नैशनल सैनिटोरियम, केंट का असिस्टंट मेडिकल सुपरिंटेंडेंट रहकर प्राणायाम के विषय में प्रयोग और निरंतर मनन के द्वारा बहुत अनुभव संचय कर लिया था जिसका उन्होंने इस पुस्तक में समावेश किया है। पुस्तक की उपयोगिता के विषय में इतना ही कह देना काफी है

कि उसके बर्लिन और पेरिस आदि स्थानों में जर्मन और फरासीसी भाषाओं में अनुवाद छप गए हैं।

भर्तृहरि आश्रम उज्जैन के डा० दुर्गाशंकर नागर, डी० एस-सी० ओ० की कृपा से जब मैंने पहले पहल इस पुस्तक को देखा था तभी मैंने चाहा था कि इसका हिंदी में अनुवाद हो जाय तो बड़ा अच्छा हो परंतु डाक्टरी पारिभाषिक शब्दों की बहुलता ने मेरे लिये पुस्तक के विषय को क्लिष्ट बना दिया था, इससे स्वयं मुझको इस काम में हाथ लगाने का उत्साह न होता था। फिर भी मान्य बंधुवर डा० नागर के निरंतर उत्साह-दान से मैंने साहस किया और उसी का फल है कि, भला-बुरा जैसा कुछ बन पड़ा है, यह अनुवाद आज पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा सका है। इसलिये उन्हें जितने धन्यवाद दिए जायँ उतने थोड़े ही हैं। डाक्टरी पारिभाषिक शब्दों के हिंदी पर्याय निश्चित करने का काम डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ने अपने ग्रंथ 'हमारे शरीर की रचना' में किया है। इस अनुवाद में उनके ग्रंथ से बड़ी अमूल्य सहायता मिली है अतः उन्हें धन्यवाद न देना अपने कर्तव्य की अवहेलना करना है। काशी विश्वविद्यालय के डा० मुकुंदस्वरूप वर्मा ने भी एकाध स्थल पर अपना परामर्श दिया है इसलिये उन्हें भी धन्यवाद देना चाहिए। प्राणायाम के विषय को अच्छी तरह से समझने के लिये मुझे कई विद्वानों और योगियों की रचनाओं को पढ़ना पड़ा है और उनसे बहुत सहायता भी ली

गई है। इसलिये वे भी धन्यवाद के भाजन हैं। विशेष कृतज्ञ मैं पुस्तक के मूल लेखक का हूँ जिन्होंने मुझे अनुवाद करने की आज्ञा देने में देर नहीं लगाई। परंतु श्रद्धेय गुरुवर बाबू श्यामसुंदरदासजी का मुझ पर इतना उपकार है कि व्यक्त धन्यवादों के द्वारा उससे उऋण होने का दुस्साहस न करना ही अच्छा है।

नाग-पंचमी, १९८४
काशी-विश्वविद्यालय

पीतांबरदत्त बड़थ्वाल

प्रस्तावना

प्राणायाम का विषय हमारे लिये नया नहीं है। जितनी पुरानी हमारी हिंदू-आर्य-सभ्यता है उतना ही पुराना हमारा उससे परिचय भी है। हमारी सभ्यता को बहुत पुरानी न माननेवालों को भी मानना पड़ा है कि तीन सहस्र वर्ष पूर्व भारत में प्राणायाम का आविष्कार हो चुका था। आज से दो हजार वर्ष पहले चीनियों को भी उसका ज्ञान था। कहते हैं कि यूनानी और रोमनिवासी भी प्राणायाम का अभ्यास किया करते थे। अफलातून ने उसका उल्लेख किया है और यूरोप के मध्यकालीन लेखकों ने उसकी कुछ विधियाँ लिखी हैं। हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल में योग-शास्त्र का प्रवर्धन हो चुका था। योग का प्राणायाम एक मुख्य अंग है। उसके द्वारा योगी नाभिचक्र में सोई हुई कुल-कुंडलिनी को जगाकर सुषुम्रा के मार्ग से ब्रह्मरंध्र की ओर प्रेरित करते थे। इससे अंत में वे ब्रह्मलीन हो जाते थे। प्राणायाम के पहले के तीन अंग यम, नियम और आसन हैं और उसके बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि आते हैं। कृष्ण-यजुर्वेद के योग-तत्त्व उपनिषद में लिखा है कि प्राणायाम से नाड़ियों का शोधन होता है। तीन मास के अभ्यास के बाद नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं। नाड़ियों के शुद्ध होने से शरीर पतला और

हलका, वर्ण दिव्य और जठराग्नि बहुत तेज हो जाती है और शरीर में किसी प्रकार की बेचैनी नहीं रहने पाती। इस उपनिषद् में प्राणायाम की यह विधि दी हुई है। दाहिने नथने को दाहिने अँगूठे से बंद कर बाँएँ नथने से धीरे धीरे साँस खींचे, जितनी देर तक हो सके उसे रोके और फिर धीरे धीरे ही दाहिने नथने से छोड़ दे। फिर इसी तरह बाँएँ नथने को बंद कर दाहिने से वायु को अंदर खींचे और जितनी देर तक हो सके उसे अंदर रोककर धीरे धीरे बाँएँ से छोड़ दे। इस प्रकार एक नथने से वायु को खींचकर दूसरे से छोड़े और जिससे वायु को छोड़े उसी से फिर अंदर खींचे। प्राणायाम करने के लिये पद्मासन बाँधकर कुश या कपड़े के आसन पर (अथवा मृगचर्म पर ?) शरीर को सीधा करके बैठना चाहिए। वायु को अंदर खींचना पूरक, रोकना कुंभक और छोड़ना रेचक कहाता है। आरंभ में पूरक १६ मात्रा का, कुंभक ६४ मात्रा का और रेचक ३२ मात्रा का होना चाहिए। हथेली को घुटने के चारों ओर घुमाकर चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उसे एक मात्रा कहते हैं। इस प्रकार योगी को सूर्योदय के पहले, दोपहर को, सूर्यास्त के समय और आधी रात को प्रतिदिन चार बार प्राणायाम करना चाहिए।

प्राण, साँस का दूसरा और बहुत सार्थक नाम है। जब तक साँस चलती रहती है, तब तक मनुष्य में प्राण रहता है, वह जीता रहता है; परंतु जब साँस बंद हो जाती है

तो मनुष्य.का प्राणांत हो जाता है, वह मर जाता है। इस प्रकार मरने-जीने की सारी कुंजी साँस अथवा प्राण है। यदि इसे वश में कर अपने हाथ में कर लिया जाय तो मरने-जीने का सारा प्रश्न आसानी से हल हो जाय। प्राणायाम का आविष्कार इसी सिद्धांत पर हुआ है और इसी उद्देश से योगी प्राणायाम करते भी हैं। अतएव वे धीरे धीरे कुंभक की मात्राएँ बढ़ाते हैं। यहाँ तक कि वे जितनी देर तक चाहें साँस को रोक सकते हैं और श्वास लेने और छोड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस अवस्था को केवल-कुंभक कहते हैं। इससे योगियों को कई प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

प्राणायाम के अभ्यासी योगियों को बड़े कड़े नियम पालने होते हैं जिनका साधारण गृहस्थ अनुसरण नहीं कर सकते। उन्हें नमक, सरसों, इमली, गरम और तीखी व कड़वी चीजें, साग-पात, हींग, अग्नि-पूजन, स्त्रियाँ, टहलना, सूर्योदय के समय स्नान आदि बातें त्याग देनी होती हैं और भोजन में सिर्फ मधुर स्वादवाली वस्तुओं को ग्रहण करना होता है। इससे बहुत से लोगों का खयाल है कि साधारण गृहस्थ प्राणायाम नहीं कर सकते और न उन्हें करने का प्रयत्न ही करना चाहिए। उससे उनका अनिष्ट ही होगा, लाभ नहीं हो सकता। परंतु यह भ्रम मात्र है। बहुत प्राचीन काल से सब हिंदू गृहस्थों के लिये हर एक धार्मिक कृत्य के

पहले शरीर की शुद्धि और मन की शांति और एकाग्रता के लिये प्राणायाम करने की व्यवस्था है। प्राणायाम से मन में पवित्र विचार उठते हैं और इंद्रिय-निग्रह, जो सब सफलताओं का मूल है, सुलभ हो जाता है—संध्या के साथ साथ हर एक हिंदू गृहस्थ शाम-सुबह और दोपहर को दिन में तीन बार प्राणायाम किया करता था इसी से वह हृष्ट-पुष्ट और दीर्घायु होकर सफलजन्म होता था। आजकल भी प्रतिदिन दो बार संध्या करना आवश्यक समझा जाता है; यह दूसरी बात है कि इस आवश्यकता को जानते हुए भी कोई उसकी पूर्ति न करे और यदि करे भी तो मंत्र-जाप की जगह केवल उँगलियों पर गिनती करे और प्राणायाम की जगह केवल नाक पर हाथ लगावे, इसका कारण हमारी जाति का धर्म-पाषंड है।

पाश्चात्य सभ्यता के संसर्ग से चाहे और कितनी ही हानियाँ क्यों न हुई हों पर इतना लाभ अवश्य हुआ है कि अनेक अनर्थों के मूल पाषंड के लिये जगह नहीं रह गई है क्योंकि बिना 'क्यों?' और 'कैसे?' का उत्तर पाए गुरु-मंत्र की तरह कोई किसी बात को स्वीकार नहीं करता। हम मान लेते हैं कि हमारे यहाँ ऋषियों की बताई हुई बहुत सी बातें बड़े लाभ की हैं परंतु उन लोगों ने हमारे लिये 'क्यों' और 'कैसे' आदि जिज्ञासाओं को पूर्ण करने का कोई साधन नहीं रख छोड़ा है। वह आविर्भाव-काल था। आविर्भाव उन

बातों का होता था जिन बातों का ईश्वर ऋषियों को ज्ञान कराना चाहता था। ऐसी बातों के लिये 'क्यों ?' और 'कैसे ?' का प्रश्न उठ ही कैसे सकता था। परंतु यह भारत में भी विज्ञान का युग है। जब तक किसी बात की उपयोगिता सैद्धांतिक रूप से सिद्ध नहीं हो जाती तब तक कोई अपने आपको व्यावहारिक प्रयोग का माध्यम बनाने को तैयार नहीं हो सकता। सिद्धांत-सिद्ध और प्रयोग-सिद्ध बातों का ही मनुष्य निःशंक होकर अनुसरण कर सकता है।

यद्यपि प्राणायाम की करामातों पर लोगों का अब तक विश्वास है तथापि वह इसका अपवाद नहीं है। सर्वसाधारण में उसका चलन तभी हो सकता है जब सिद्धांत और प्रयोग दोनों तरह से उसकी उपयोगिता सिद्ध हो जाय। इस काम को डा० शोजाबुरो ओटेब ने अपनी पुस्तक 'दि साइंस ऐंड आर्ट ऑफ डीप-ब्रीदिंग' में बड़ी खूबी के साथ किया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि प्राणायाम से शरीर पुष्ट और मन शांत होता है और कई रोग दूर हो जाते हैं। सामान्य रोग ही नहीं यक्ष्मा तक उसके द्वारा आराम हो सकता है। और यदि मनुष्य नियमानुसार शाम सुबह प्राणायाम करता रहे तो उसे कोई रोग न हो।

इस बात में प्राणायाम के सब समर्थक सहमत हैं कि प्राणायाम से शरीर पुष्ट होता है। शरीर-संस्कार आंदोलन के प्रवर्तक श्री बर्नर मेकफडन के साथ प्राणायाम के प्रायः सभी

ज्ञाताओं का मत है कि प्राणायाम करते समय फेफड़ों में वायु के साथ अधिक औक्सिजन जाता है, इससे रक्त अधिक शुद्ध होता है और इसी से शरीर पुष्ट होता है। परंतु डा० ओटेब ने सिद्ध किया है कि यह विचार गलत है। उनका मत है कि प्राणायाम करते समय शरीर को अधिक औक्सिजन नहीं मिलता। बल्कि केवल फेफड़ों का व्यायाम होता है और वे मज़बूत हो जाते हैं, जिससे सदैव ही फेफड़े वायु से अधिक औक्सिजन खींच सकते हैं। प्राणायाम का महत्त्व अभ्यास के समय की थोड़ी सी अधिक वायु या औक्सिजन में नहीं है बल्कि वायु से निरंतर अधिक औक्सिजन लेने की शक्ति में है जो उससे प्राप्त होती है। बहुत प्राचीन काल में भी रोगों को दूर करने के लिये प्राणायाम का उपयोग होता था। कुछ रोमन ग्रंथकारों के ग्रंथों से पता चलता है कि रोम में रोगों को आराम करने के लिये साँस रोकने का अभ्यास किया जाता था। उनका विश्वास था कि ऐसा करने से शरीर में गरमी पैदा होती है जिससे रोग भस्म हो जाते हैं और शरीर बलवान् हो जाता है। जर्मन दार्शनिक इमैनुएल कैंट (१७२४–१८०४) ने मनोबल के द्वारा रोग शमन करने के विषय पर एक पुस्तक लिखी थी। उसमें एक अध्याय में उन्होंने दिखलाया है कि साँस रोकने से कई रोग आराम हो जाते हैं। हमारे यहाँ भी अत्यंत प्राचीन काल से हठयोगी भिन्न भिन्न आसनों के साथ प्राणायाम के द्वारा रोगों का निवारण किया करते थे।

लोगों का विश्वास है कि अब भी ऐसे योगी मौजूद हैं जो इस प्रकार रोगों को दूर कर सकते हैं। नहीं कह सकते कि उनकी प्रणाली क्या है।

सुषुम्ना नाड़ी का जिक्र ऊपर कर चुके हैं। इस नाड़ी की स्थिति मेरुदंड के बीचों बीच है। योगी इसके बाईं ओर इडा और दाहिनी ओर पिंगला नाड़ी बताते हैं। स्वरोदय के अनुसार साँस जब बाँएँ नथने से चलती है तो इडा से होकर आती जाती है और जब दाहिने से चलती है तो पिंगला के मार्ग से। साँस जब सुषुम्ना नाड़ी से आती है तो कुछ क्षण दाहिने और कुछ क्षण बाँएँ नथने से चलती है। कहते हैं कि इडा से चलनेवाली साँस का प्रभाव ठंडा और पिंगला से चलनेवाली का गरम होता है। इसी से इन नाड़ियों का नाम क्रमशः चंद्रनाड़ी और सूर्यनाड़ी भी है।

योगशास्त्र में पारी पारी से एक नथने को बंद करके दूसरे नथने से साँस खींचने की व्यवस्था है। ऐसा करने से शरीर में ठंड और गरमी का साम्य रहता है। साँस दोनों नथनों से समरूप से किसी विरले ही समय आती है इससे साधारण प्राणायाम से शरीर में ठंड और गरमी की विषमता होना निश्चित है। इस सिद्धांत के अनुसार जिन रोगों में शरीर ठंडा पड़ जाता है और गरमी बढ़ाने की आवश्यकता होती है उनका निराकरण दाहिने नथने से वायु खींचकर प्राणायाम करने से हो सकता है। इसी प्रकार जिन रोगों में शरीर का ताप

बढ़ा हुआ रहता है उनको बाएँ नथने से वायु खींचकर प्राणा-याम करने से शरीर में आवश्यक ठंड लाकर दूर किया जा सकता है। जो कुछ भी हो, इतनी बात निश्चित है कि रोगों के उपचार में प्राणायाम का प्रयोग कोई नई बात नहीं है।

परंतु चिकित्साशास्त्र के नियमों के अनुकूल वैज्ञानिक रूप से प्राणायामोपचार की पद्धति का आविष्कार प्राणायाम के इसिहास में अवश्य नई बात है। इसका सबसे अधिक श्रेय डा० ओटेब को मिलना चाहिए। कई वर्षों से अमेरिका आदि देशों में शरीर-संस्कार-आंदोलन से लोगों को प्राणायाम की उपयोगिता मालूम होने लगी है। श्रीबर्नर मेकफडन का नाम इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। रोग-निवृत्ति और आरोग्य-प्राप्ति के लिये अन्य प्राकृतिक उपायों के साथ साथ उन्होंने प्राणायाम का भी बहुत कुछ प्रचार किया है। उसे वैज्ञानिक रूप देने का भी उन्होंने काफी प्रयास किया है और उसमें कुछ सफलता भी पाई है। परंतु सुंदरता के साथ शरीर-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र, व्यवच्छेदशास्त्र आदि की सहायता से इस विषय को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कर प्राणायामोपचार को वैज्ञानिक पद्धति का रूप देना और उसे दृढ़ नीव पर रखना डा० ओटेब का ही काम है। डा० साहब ने प्राणायाम के विषय में फैले हुए कई हानिकारक भ्रमों का भी निवारण किया है जिनका पुस्तक में यथा-स्थान वर्णन मिलेगा। बहुत से डाकृर अपने मरीजों को प्राणायाम करते हुए दौड़ने की सलाह देते हैं परंतु जैसा डा०

ओटेब ने सिद्ध किया है ऐसा करना लाभ के बदले उलटे हानि पहुँचाता है और श्वासावरोध हो जाने का डर रहता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह सिद्ध कर, कि प्राणायाम से कुछ दशाओं में क्षय भी आराम हो सकता है, मानव जाति का बड़ा उपकार किया है। उन्होंने यह भी दिखलाया है कि प्राणायाम करते रहने से क्षय का कभी आक्रमण ही नहीं हो सकता। रोगों में क्षय मानव जाति का सबसे भीषण शत्रु है। सर्वसाधारण का विचार है कि क्षय का रोगी कभी बच नहीं सकता। बड़े बड़े डाक्टरों, कविराजों और हकीमों का भी यही विचार है। यदि उनकी जीविका पर धक्का न पहुँचे तो वे ऐसे रोगियों को दवा देना व्यर्थ बता देवें। परंतु प्राकृतिक आहार विहार से तथा प्रकृति के अनुकूल सात्त्विक तथा विवेकपूर्ण जीवन बिताने से कई क्षय-रोगी आराम हो गए हैं। डा० ओटेब ने यह बता दिया है कि किन किन दशाओं में और किस प्रकार प्राणायाम इस काम में प्राकृतिक उपायों का सहायक हो सकता है। इसका यह अर्थ न समझना चाहिए कि वे दवाओं के व्यवहार के विरोधी हैं। प्राणायाम के साथ साथ वे स्वयं दवाओं की भी व्यवस्था करते हैं।

उनकी हार्दिक इच्छा है कि प्रत्येक चिकित्सक क्षय आदि रोगों की चिकित्सा में प्राणायाम का भी सहारा ले। परंतु प्राणायामोपचार में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। बिना सावधानी के उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। यदि असा-

वधानी से प्रयोग किया जाय तो न कोई औषध औषध का काम दे सकती है और न कोई उपचार उपचार का। क्षय की चिकित्सा में आजकल धीरे धीरे परिश्रम बढ़ाने की प्रथा सर्वप्रिय हो रही है। इसमें रोगियों को थोड़ा थोड़ा करके मेहनत कराना आरंभ किया जाता है। धीरे धीरे मेहनत की मात्रा बढ़ाई जाती है। इससे शरीर के और अंगों के साथ साथ फेफड़ों का व्यायाम क्रमशः बढ़ता जाता है। प्राणायाम भी फेफड़ों का व्यायाम ही है; उसे भी सावधानी और विवेक के साथ इसी प्रकार बहुत थोड़े से शुरू कर शनैः शनैः बढ़ाना चाहिए।

क्षय के विशेषज्ञ डा० मुथू का विश्वास है कि क्षय उतना क्षय के कीटाणुओं से नहीं होता जितना निर्धनता आदि कारणों से पैदा हुई मानसिक चिंता, अशांति, उद्विग्नता और क्षोभ के कारण। जब तक ये बातें शरीर को जर्जरित कर इन कीटाणुओं के आक्रमणों का प्रतिरोध करने के लिये उसे असमर्थ नहीं कर डालतीं तब तक वे पनप नहीं सकते। बहुत प्राचीन काल से यह विश्वास चला आ रहा है कि प्राणायाम से चिंता, क्षोभ और उद्विग्नताएँ दूर होती हैं और मन शांत हो जाता है। डाक्टर ओटेब ने इस तथ्य को वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया है। डाक्टर मुथू और और व्यायामों के साथ अपने रोगियों से दीर्घ श्वासोच्छ्वास भी कराते हैं। रोगियों के लाभ के लिये हम क्षय के उपचार के विषय में उनके कुछ और मत के उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं

कर सकते। उनका मत है कि रोगी के लिये नियमबद्ध परि-श्रम के साथ साथ विश्राम भी बहुत आवश्यक है। खास कर भोजन के पहले एक घंटा और बाद को भी कुछ समय जरूर आराम करना चाहिए। संपूर्ण अंगों को ढीला करके चित लेट रहने से या तकिए के सहारे अथवा आरामकुर्सी पर बैठ रहने से सबसे अच्छा आराम मिलता है। वे और डा० ओटेब इस बात में सहमत हैं कि दिन में तीन बार खाना चाहिए। डा० मुथु ९ बजे सुबह, १ बजे दोपहर को और ७ बजे शाम को अपने रोगियों को भोजन कराते हैं। भोजन जितना सादा हो उतना ही अच्छा। वे दवा के व्यवहार के पक्षपाती नहीं हैं। वे अपने रोगियों को तभी दवा देते हैं जब वे समझते हैं कि बिना दवा दिए काम नहीं चलेगा। दवा अक्सर प्रकृति के आरोग्य-निर्माणकार्य में बाधा डालती है।

डाक्टर ओटेब ने कुछ दशाएँ बतलाई हैं जिनमें प्राणा-याम का अभ्यास लाभकारी नहीं होता। इसका कारण यही है कि ऐसी दशाओं में फुप्फुस इतने निर्बल होते हैं कि उनका व्यायाम करने से उनको क्षति पहुँचती है। परंतु मन की शांति ऐसी दशाओं में भी अपेक्षित है और वह भी विशेष रूप से। ऐसे लोगों को तकिए के सहारे अथवा आरामकुर्सी पर सुख से बैठकर निष्क्रिय होकर अपने श्वास-कर्म पर विचार करना चाहिए। यही उनके लिये काफी प्राणायाम होगा। और कारणों से भी जो कोई प्राणायाम न कर सकें, उन्हें भी

यही करना चाहिए। उनकी साँस ऐसा करने से नियम-शील हो जायगी, टूट टूटकर न आवेगी। इससे जब उनके फेफड़े थोड़ा बल प्राप्त कर लें तब चिकित्सक की अनुमति से प्राणायाम करना आरंभ कर सकते हैं। परंतु उन्हें पहले न तो फेफड़ों को बहुत फुलाना ही चाहिए और न साँस को रोकना ही चाहिए। धीरे से थोड़ी सी वायु को फुप्फुसों में खींचकर बिना रोके वैसे ही धीरे से छोड़ देना चाहिए। परंतु संदिग्धावस्था में कभी प्राणायाम का प्रयोग न करना चाहिए।

साँस जब प्रमित रूप से आती है तो आदमी को यह नहीं अनुभव होता कि वह साँस ले रहा है, श्वास कर्म बे खबर अपने आप होता रहता है। जब उसमें कुछ गड़बड़ी होती है तभी मनुष्य का ध्यान उस ओर जाता है। श्वास-कष्ट कई प्रकार का होता है। कभी तो साँस ली ही नहीं जाती, कभी एक नथना साँस के आने जाने के लायक ही नहीं रहता और कभी दोनों नथने बंद से हो जाते हैं और मनुष्य को मुँह से साँस लेना पड़ता है। ये बातें इस बात की सूचना देती हैं कि श्वास-संस्थान में कुछ खराबी है। यह खराबी अगर शुरू में ही ठीक न कर दी जायगी तो आगे चलकर अवश्य किसी भयंकर रूप में प्रकट होगी। इनसे फेफड़ों के कई भयानक रोगों के हो जाने का डर रहता है। नाक, मुँह, कंठ आदि को धोकर हमेशा साफ रखने और

प्राणायाम का अभ्यास करने से ये आदतें दूर हो जायँगी। बहुधा अप्राकृतिक रीति से साँस लेने से और चुस्त कपड़े पहनने से भी ये आदतें पड़ जाती हैं। शरीर सदैव सीधा और छाती उभरी हुई रहनी चाहिए। टेढ़े मेढ़े रहने से या घुग्घू की तरह झुके रहने से साँस अच्छी तरह नहीं ली जा सकती। श्री मेकफडन आदि विद्वानों का मत है कि पेडू को फुला और सिकोड़कर साँस लेनी और छोड़नी चाहिए। नवजात शिशु इसी प्रकार साँस लेता है क्योंकि यही स्वाभाविक भी है। इसे उदरगत श्वासव्यापार कहते हैं। प्राणायाम भी इसी तरह करना चाहिए। बहुत से लोग छाती से ही साँस लेते हैं। इससे छाती कुडौल और चपटी और साँस धीरे धीरे उथली हो जाती है जिसका फल यह होता है कि फेफड़े निर्बल हो जाते हैं। हमारे योगशास्त्र के अनुसार छाती के दोनों पार्श्वों को तथा फुप्फुसों के सब भागों को फुलाना चाहिए और नाभि-पर्यंत वायु का जोर पहुँचाना चाहिए। उदरगत श्वास-व्यापार का भी यही अर्थ है। इस प्रकार स्वाभाविक रीति से साँस लेने से ऊपर लिखी अस्वाभाविक आदतें दूर हो सकती हैं। जिन लोगों ने इन आदतों से अपने श्वास-संस्थान को बिगाड़ डाला है और जो फेफड़ों के निर्बल होने के कारण क्षय के भय से क्षुब्ध हैं उन्हें आशा-पूर्वक बिना विलंब के ही प्राणायाम करना शुरू कर देना चाहिए। यही उनके लिये डा० ओटेब की सलाह है।

पुराने जमाने का हिंदू अपना धर्म समझकर प्रतिदिन प्राणायाम किया करता था इसी से वह बलिष्ठ, सुखी और दीर्घायु होता था। आज प्राणायाम की उस समय से अधिक आवश्यकता है। तब लोगों का रहन-सहन सादा और स्वाभाविक था किंतु अब आधुनिक सभ्यता की बाढ़ के कारण लोग दिन दिन अस्वाभाविकता में डूबे जा रहे हैं; और रोगों के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा हो रही हैं। फलतः भारतवासी की औसत उमर इस समय २२।२३ वर्ष है। ऐसी दशाओं में स्वास्थ्य को बनाए रखकर सुखी होने का एक-मात्र साधन प्राणायाम ही है। इसलिये प्राणायाम के विशेषज्ञ हृदय से चाहते हैं कि प्राणायाम का आश्रय लेकर

सर्वे वै सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयाः।

१६ श्रावण १९८४,
पाली-लैंसडाउन, गढ़वाल } **पीतांबरदत्त बड़थ्वाल**

प्राणायाम-विज्ञान और कला

अर्थात्

प्राणायाम के द्वारा यक्ष्मा का अनागत प्रतिषेध और उपचार

प्राणायाम का प्रयोजन

प्राणायाम के वैज्ञानिक सिद्धांत की व्याख्या, उसके प्रयोग-सिद्ध परिणामों और उसकी रीतियों का वर्णन करने के पहले मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि मैंने क्यों प्राणायाम करना आरंभ किया।

पाँच वर्ष की अवस्था तक मैं खूब स्वस्थ रहा, किंतु पाँचवें वर्ष, १८९२ के मार्च में, मेरी बाईं जाँघ पर अचानक अस्थि-शोथ हो गया। नगर के एक चिकित्सक से सलाह ली गई, परंतु वह रोग को नहीं पहचान सका। सूजन बुरी तरह बढ़ती गई, इससे मेरे माता-पिता को बड़ी चिंता हुई। वे मुझे टोकियो के सतो के अस्पताल में ले गए। परंतु उचित उपचार के लिये अब बहुत देर हो गई थी और मेरा शरीर बहुत कृश हो चला था।

जब मुझे इस अस्पताल में एक महीना हो गया तब बैरन सतो ने मेरे माता-पिता को सम्मति दी कि मुझे वायु-परिवर्तन के लिये निक्को भेज दें। जब मैं निक्को में था तो रुग्ण भाग पकने लगा। इसलिये एक सर्जन ने चीर-फाड़ की। इस छोटे से औपरेशन के बाद पीड़ा प्रायः भाग गई और साधारणतः मेरा स्वास्थ्य कुछ अच्छा हो गया। किंतु पूरी चिकित्सा के लिये मैं अभी बहुत निर्बल था।

जब मैं बारह वर्ष का हुआ तो एक प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक डाक्टर हतनो ने मेरी जाँच की। रोग का पूरी तरह निदान कर लेने पर उन्होंने शल्यचिकित्सा (चीर-फाड़) के लिये उस अवसर को ठीक उपयुक्त बतलाया। उसी वर्ष, मार्च में मैं मितो में उनके अस्पताल में भरती हो गया। वहाँ मेरी बाईं जाँघ पर कठिन औपरेशन किया गया और बेकाम हड्डी के तीन टुकड़े निकाले गए। यह चीर-फाड़ सफल सिद्ध हुई। उसी वर्ष नवंबर में मैं सात वर्ष की लंबी बीमारी से प्रायः आरोग्य हो गया। मेरे माता-पिता के हर्ष का ठिकाना न रहा।

इस प्रकार पाँचवें और सातवें वर्ष के बीच जिस समय बालकों की शारीरिक वृद्धि होती है, मैं रोग के कारण खाट ही पकड़े रहा और यदि डाक्टर हतनो ने कुशल शल्य-प्रयोग न किया होता तो मैं लँगड़ा हो गया होता और संभव है कि मर भी गया होता। आजकल भी कई लोग इसी रोग के कारण या तो लूले हो जाते हैं या मर जाते हैं।

जब मैं चार वर्ष का था तो अपने नगर की प्रारंभिक पाठ-शाला में पढ़ता था। पढ़ाई तो वहाँ मैं कुछ कर नहीं पाया था, फिर भी अप्रैल १९०० में, तेरह वर्ष की अवस्था में, मैं शिमोजुमा के मिडिल स्कूल में ले लिया गया।

ऑपरेशन हुए अभी केवल पाँच महीने हुए थे; इसलिये मेरा चेहरा इतना पीला और शरीर इतना दुबला था कि हर कोई मुझे क्षयी-बालक समझता था। पाठशाला के वैद्य ने मेरी जाँच करके कहा, तुम्हारे फेफड़े बलवान् नहीं हैं, तुम्हें उनकी परवा करनी चाहिए। डाक्टरी जाँच से पता चला कि मेरी छाती अपने दर्जे में सबसे ज्यादे सिकुड़ी हुई थी और फेफड़े को फुलाने और संकुचित करने से छाती की चौड़ाई में केवल १.८ इंच का अंतर होता था।

डाक्टर ने मेरे छोटे से हृदय को बड़ा उत्साहित किया। उस समय मेरे नगर में क्षय से बहुत लोग मर रहे थे और मुझे विश्वास हो गया था कि यक्ष्मा संसार में सबसे भयंकर रोग है। यक्ष्मा का प्रतिबंध क्यों नहीं किया जा सकता? फुप्फुस को बलिष्ठ बनाने का सबसे अच्छा उपाय क्या है? ये प्रश्न मुझे हमेशा चिंता में डाले रखते थे।

इसके बाद शीघ्र ही मुझे प्रकृति-विज्ञान-संबंधी एक व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। उससे मुझे पता लगा कि जैसे आग हवा की सहायता से जलती है उसी तरह शरीर का ताप भी ऑक्सिजन की खपत और शरीर की तथा उसके सब

तंतुओं की पुष्टि पर निर्भर है। तब मेरे मन में विचार आया कि अगर फेफड़े इतने मजबूत हों कि काफी औक्सिजन खींच सकें तो क्षय के कीड़े फेफड़ों में प्रवेश कर लेने पर भी औक्सिजन से जल जायँ। जैसे उचित व्यायाम से शरीर बलवान् बनता है उसी प्रकार उपयुक्त व्यायाम से फेफड़े भी बलवान् बनाये जा सकते हैं। और फेफड़ों का व्यायाम प्राणायाम मात्र है। इस अन्वेषण ने मेरे मन को शांत किया और यही मेरे प्राणायाम को आरंभ करने का कारण है।

व्याख्यान समाप्त होते ही मैं अपने डेरे पर लौट आया और देहात की पवित्र वायु में प्राणायाम का अभ्यास करने लगा। यह २४ मई १९०० की बात है। तब से मैं प्रतिदिन प्रात:काल पाठशाला को जाते हुए, खेलते हुए, चलते हुए और सोने से पहले दृढ़ता से प्राणायाम करने लगा। केवल जागते हुए ही नहीं, स्वप्नों तक में मैंने प्राणायाम किया। और अब तक मुझे कई अवसर याद हैं जब बिस्तरे पर से जग-कर मैंने अपने आपको प्राणायाम करते हुए पाया।

इस समय से मेरे शरीर में ख़ूब उन्नति होने लगी। एक ही वर्ष में फेफड़ों को फुलाने और सिकोड़ने से मेरी छाती की चौड़ाई में लगभग ४ इंच का अंतर हो गया और उँचाई में मैं चार इंच बढ़ गया। अब मैंने डाक्टर से पूछा कि, क्या मेरे फेफड़े यक्ष्मा के शिकार तो न होंगे? उसने उत्तर दिया, तुम्हारी बड़ी तगड़ी छाती है, क्षय का तुम्हारे लिये सवाल

ही नहीं उठ सकता। मैं प्रसन्नता से फूला न समाया। इस प्रकार मैंने अपनी ही इच्छा से प्राणायाम करना आरंभ किया था, किसी वैद्यक-ज्ञान के कारण नहीं। मुझे दृढ़ विश्वास हो गया था कि प्राणायाम से शरीर बलवान् होता है और यक्ष्मा का प्रतिबंध होता है। इसी विश्वास से मैं अपने माता-पिता और बंधु-बांधवों को प्राणायाम करने की सम्मति देने लगा। अपने विश्वास के कारणों का जब कभी मैं स्मरण करता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि यद्यपि वे बहुत साधारण थे तो भी आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार सर्वथा अशुद्ध नहीं थे।

अपने तेरहवें और पंद्रहवें वर्ष के बीच मैं आजकल से भी अधिक समय तक प्राणायाम किया करता था, कभी कभी तो मैं चार या पाँच घंटे प्रतिदिन प्राणायाम करता था। बहुधा लोग मुझसे पूछते हैं कि युवकों के लिये और विशेष कर बालकों के लिये प्रति दिन तीन-चार घंटे प्राणायाम करना हानिकारक तो नहीं है? ये संदेह कल्पित हैं, अनुभव इनका आधार नहीं है। स्वयं अपने अनुभव से मेरा विश्वास है कि कई घंटों तक प्रतिदिन प्राणायाम करना बहुत लाभदायक है।

जब मैं अठारह वर्ष का था तो मुझे यह जानने की इच्छा हुई कि प्राणायाम का शरीर के वजन पर क्या प्रभाव पड़ता है। २ अगस्त १९०५ से १८ जुलाई १९०७ तक मैंने प्राय: हर महीने एक वार अपना वजन लिया और नीचे लिखे परिणाम पाए।

तारीख		वजन		
२ अगस्त १९०५		१ मन	११ सेर	८ छटाँक
१ सितंबर	,,	१ ,,	११ ,,	१०½ ,,
४ नवंबर	,,	१ ,,	११ ,,	१०½ ,,
३ जनवरी १९०६		१ ,,	११ ,,	१३½ ,,
२ फर्वरी	,,	१ ,,	११ ,,	१४½ ,,
५ अप्रैल	,,	१ ,,	१२ ,,	७ ,,
१९ जून	,,	१ ,,	१३ ,,	१४ ,,
७ जुलाई	,,	१ ,,	१३ ,,	१५ ,,
२० सितंबर	,,	१ ,,	१६ ,,	
४ नवंबर	,,	१ ,,	१५ ,,	
९ दिसंबर	,,	१ ,,	१७ ,,	१२½ ,,
१० फर्वरी १९०७		१ ,,	१९ ,,	११ ,,
१४ मार्च	,,	१ ,,	२० ,,	११ ,,
३ अप्रैल	,,	१ ,,	२० ,,	११ ,,
५ मई	,,	१ ,,	२१ ,,	३ ,,
१८ जुलाई	,,	१ ,,	२१ ,,	११ ,,

इस सारिणी से सिद्ध है कि मेरा वजन हर महीने बढ़ता गया किंतु मेरे वजन की वृद्धि इतनी स्पष्टांकित नहीं है जितनी उस व्यक्ति की होती जिसने हाल ही में प्राणायाम आरंभ किया होता।

मुझे खेद है कि तेरहवें वर्ष से बीसवें वर्ष तक मैंने अपनी ऊँचाई पर प्राणायाम के प्रभाव का विवरण नहीं रक्खा।

अपने जान-पहचान के लोगों पर किए गए प्रयोगों से प्राप्त शुभ-परिणामों में से मैं केवल एक का उल्लेख करता हूँ। १३ मई १९०७ को मैं अपने मित्र टोगोरो यमशित से मिलने नोडा (जापान) गया। मैंने उन्हें प्राणायाम करने की सम्मति दी। आधी रात तक वाद-विवाद करने के बाद उन्हें उसके आरोग्यप्रद प्रभावों पर विश्वास हो गया। २२ सितंबर १९०७ से लेकर १ मई १९०९ तक उनके वजन में प्राणायाम के कारण इस प्रकार वृद्धि हुई—

तारीख	वजन			छटाँक
२२ सितंबर १९०७	१ मन	१२ सेर		"
७ अक्टूबर "	१ "	११ "	१½	"
२५ नवंबर "	१ "	१४ "	१½	"
१५ दिसंबर "	१ "	१५ "		
१५ जनवरी १९०८	१ "	१६ "	८	"
२० फर्वरी "	१ "	१७ "	८	"
२७ मार्च "	१ "	१८ "	१०	"
५ अप्रैल "	१ "	१८ "	११	"
७ मई "	१ "	२० "	५	"
२१ जून "	१ "	२३ "	३	"
१६ जुलाई १९०८	१ "	२५ "	३	"
१४ अगस्त "	१ "	२६ "	४½	"
१ सितंबर "	१ "	३० "	१	"

तारीख	वजन		
७ अक्टूबर १६०८	१ मन	३१ सेर	४½ छटाँक
१५ नवंबर ”	१ ”	३४ ”	७½ ”
१५ फरवरी १६०६	१ ”	३६ ”	८ ”
२१ मार्च ”	१ ”	३५ ”	४½ ”
२४ अप्रैल ”	१ ”	३६ ”	
१ मई ”	२ ”		१२ ”

इस प्रकार उनके वजन में ५५७ दिन में २८ सेर ८½ छटाँक की बढ़ती हुई। मैं बहुधा उनके यहाँ इस बात की जाँच करने जाया करता था कि यह वृद्धि अस्वस्थ रूप से हो रही है या स्वस्थ रूप से और मुझे पता चला कि अस्वस्थ रूप से नहीं, स्वस्थ रूप से ही यह वृद्धि हो रही है। वे मेरे कहने के अनुसार ठंडे जल से स्नान और शीत घर्षण भी करते थे।

प्राणायाम के वैज्ञानिक सिद्धांत की व्याख्या मैं फिर करूँगा, यहाँ पर यह बतला देना चाहता हूँ कि वह किस प्रकार केवल पेशियों और अस्थियों को ही नहीं फुप्फुस और हृदय को भी बलवान् बनाता है। इस संबंध में मैं दो दृष्टांत देता हूँ, एक अध्यापक के० फुतकी का और दूसरा स्वयं अपना।

अध्यापक फुतकी ने उदरगत-श्वासक्रिया (प्राणायाम की एक विधि) का अभ्यास करना उसी समय आरंभ कर दिया था जब वे हाई स्कूल में विद्यार्थी थे। इससे उनका निर्बल शरीर बलिष्ठ हो गया। जिन दिनों वे प्राणायाम को

अधिक दृढ़ता और उत्साह के साथ किया करते थे उन दिनों उन्होंने छत्तीस मील की एक दौड़ में भाग लिया और उसे जीत लिया, यद्यपि इस दौड़ में भाग लेनेवाले कई प्रतियोगी ऐसे भी थे जो उनसे अधिक बलवान् दिखाई देते थे। इस प्रकार उन्होंने सिद्ध कर दिया कि उनके फुप्फुस और हृदय भी उतने ही बलवान् हैं जितने उनके और अवयव। यदि केवल उनके अवयव ही बलिष्ठ होते और फेफड़े और हृदय निर्बल होते तो वे अवश्य ही दौड़ में जीत नहीं सकते थे।

दूसरा दृष्टांत मेरा अपना है। बचपन में सात वर्ष तक अस्थिशोथ से पीड़ित रहने के कारण मेरी टाँगें और जाँघें बहुत कमजोर थीं और मैं उतनी अच्छी तरह नहीं चल फिर सकता था जितनी अच्छी तरह और तंदुरुस्त लड़के। और न मैंने बचपन में किसी खेलकूद में भाग लिया और न कालेज में ही।

ऐसी दशा में जुलाई १९०९ में, जब मेरी अवस्था २२ वर्ष की थी, मैंने फ्यूजी पर्वत पर चढ़ने का सहसा निश्चय किया। यह पर्वत जापान की प्रधान भूमि में सब पर्वतों से उत्तुंग और सौंदर्यमय है। समुद्री सतह से इसकी उँचाई १२,५०० फुट है। मैंने अपनी इच्छा एक निकटतम मित्र पर प्रकट की। उन्होंने शीघ्र ही उसे त्याग देने की सलाह दी। मैंने उन्हें इस दयामय उपदेश के लिये धन्यवाद दिया पर यह मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्यों अपने विचार को छोड़ दूँ। मेरी टाँगें कमजोर हैं तो क्या हुआ, मेरा हृदय और फेफड़े तो बलवान् हैं।

इसलिये २४ अगस्त को मैंने अपने निवास-स्थान से प्रस्थान कर दिया और दूसरे दिन प्रात:काल मैं गोदंबा पहुँच गया। गोदंबा फ्यूजीयामा के पाद पर एक छोटा सा नगर है। आवश्यक तैयारियाँ कर लेने पर मैं उसी सुबह को साढ़े चार बजे वहाँ से चल दिया। फ्यूजीयामा के पाद से उसके शिखर तक की दूरी निम्नलिखित दस संकेत-दंडों से अंकित हैं— इचिगोम, निगोम, संगोम, शिगोम, गोगोम, रोकुगोम, हिचिगोम, हचिगोम, कुगोम और जुगोम। दूसरे दंड निगोम पहुँचने तक मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम हुई। तीसरे दंड संगोम से मेरे नितंब और जाँघें दुखने लगीं।

जब मैं तीन साथियों की सहायता से सातवें दंड हिचिगोम पहुँचा तो इतना थक गया था कि मेरे नितंबों और जाँघों की चेतनता जाती रही और मैं बड़े प्रयास से भी उन्हें हिला न सका। तो भी मेरा नाड़ी-स्फुरण और मेरी श्वासक्रिया अप्रमित न हुई और न मुझे मानसिक थकान मालूम हुई। यहाँ से अब "मन्नेन्युकी" दिखाई देने लगा। हमारे सामने अक्षय्य हिम का विस्तीर्ण प्रसार था और हमारे नीचे थे चंचल बादलों के वृंद। हमें फ्यूजीयामा का दिव्य दर्शन हुआ।

प्राय: एक घंटे के विश्राम के पश्चात् मैं पूर्णत: स्वस्थ हो गया। साथियों के उत्साह-दान से मैं धीरे धीरे चलने लगा, शनै: शनै: मेरी टाँगें बिल्कुल नरम हो गईं और मैं अपने साथियों से तेज चलने लगा। ज्यों ज्यों ठंढ अधिक और

वायु सूक्ष्म होने लगी त्यों त्यों मेरे साथियों को साँस लेने में कठिनाई मालूम पड़ने लगी, उनके दिल की धड़कन बहुत तेज़ हो गई और उनके सारे शरीर में बेचैनी मालूम होने लगी।

नवें दंड कुगोम पहुँचने पर मेरा एक साथी गिर पड़ा। उसकी साँस भारी हो गई और उसका चेहरा इतना पीला पड़ गया कि हमें बड़ी चिंता हो गई। ऊँचे पर्वतों पर चढ़ने में, घोर शीत, सूक्ष्म वायु और न्यून वातावरणीय भार के कारण ये लक्षण साधारणतः हो जाया करते हैं। और जिसका हृदय और फेफड़े निर्बल होते हैं उसे ये बहुत जल्दी धर दबाते हैं। अपनी बाँहों को उसकी काँख तले रखकर मैंने उसे चोटी तक पहुँचने में सहायता दी। उसी दिन संध्या को साढ़े सात बजे हम जापान के सर्वोच्च भूधर फ्यूजीयामा के शृंग पर जा पहुँचे।

चोटी के मध्य में हमें एक बड़ा विवर मिला, उसकी परिधि तीन मील से अधिक होगी; वह एक ज्वालामुखी का मुख था जिसने तीन सौ वर्ष पहले आग उगली थी। बर्फ गिर रही थी और तीखी हवा चल रही थी, शीत इतनी थी कि हमारी साँस तक जम गई थी। मेरे साथी अत्यंत विवर्ण हो गये थे और घोर शीत के मारे काँप रहे थे।

पहले हमने चट्टानों से बने असमगोंगन नामक एक मठ में पूजा की। यह मंदिर एक प्राचीन जापानी-राजकुमारी को समर्पित है। तदनंतर हम शीत-समीर के विमुख ज्वालामुखी के मुख-विवर के किनारे किनारे चलने लगे। भूरी लावा और

कृष्णगगनाधार श्वेत मेघों के अतिरिक्त वहाँ और कुछ दृष्टि-गोचर न होता था। आठ बजे के लगभग हम उतरने लगे और सातवें दंड पर हमने पत्थर के बने एक होटल में रात बिताई।

यह बात विचारने की है कि पर्वत-पाद से सातवें दंड तक तो मैं इस दल में सबसे निर्बल था और वहाँ से शिखर तक सबसे बलिष्ठ। बात यह है कि पहाड़ पर चढ़ने के लिये बल-वान् जाँघों की अपेक्षा बलवान् हृदय और बलवान् फेफड़ों की अधिक आवश्यकता है।

प्राणायाम और मन का संबंध बताने के लिये यहाँ पर मैं एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ। जापान में आजकल भी प्रसिद्ध पुरोहित अपने मन के संस्कार के लिये सुबह शाम प्राणायाम की जजन नामक एक विधि का अभ्यास करते हैं। अतीत काल से ही यह स्पष्ट विदित है कि जजन का मन पर शांतिदायक प्रभाव पड़ता है; पर इसके विषय में मैं पीछे कहूँगा।

जब किसी को अचानक कोई घटना घटती है तो उसकी मानसिक स्थिति डाँवाडोल हो जाती है। ऐसी अवस्था में दस मिनट तक प्राणायाम करने से मन शांत हो जाता है।

फ्यूजीयामा-आरोहण के बाद इस प्रकार के अभ्यासों में मुझे खूब आनंद मिलने लगा। ४ जनवरी १९११ को मैं जापान के हकोन नामक एक प्रसिद्ध पर्वत पर अकेले ही चढ़ा। मोतो-हकोन नामक एक छोटे से नगर से पाँच मील की दूरी से मैंने

आम सड़क छोड़ दी और कुतूहल-वश एक पगडंडी पकड़ ली। शीघ्र ही मैं रास्ते से बेरास्ते हो गया, कुछ पता ही न चलता था कि किस ओर जाऊँ और किस ओर न जाऊँ। गिरी हुई पत्तियों से पृथ्वी ढकी हुई थी और पथ का चिह्न तक न दिखाई देता था। एक छोटे से पहाड़ी सोते की लहरें अस्त होते हुए सूर्य की किरणों से चमक रही थीं, सिर के ऊपर वृक्षों की शाखाएँ खड़खड़ा रही थीं, धीरे धीरे अंधकार छा गया और वायु अधिक शीत हो गई। भय हो रहा था कि कहीं रीछ, भेड़िए या ऐसे ही कोई और जंगली जानवर मुझे निगल न डालें। किंतु इसी क्षण मुझे प्राणायाम का विचार हो आया। मैंने अपनी आँखें बंदकर प्राय: दस मिनट तक गहरी साँसें लीं और फिर भूमि पर विकीर्ण सूखी पत्तियों पर बैठकर लगभग पाँच मिनट तक जजन का अभ्यास किया। बस भय की भीषण भावनाएँ लुप्त हो गईं और मुझे साहस हो आया। फिर मैं किसी एक दिशा में जाने का निश्चय कर चलने लगा। पर्वतीय जलधाराओं को, उत्तुंग चट्टानों को और किसी भी वस्तु को जो मार्ग में पड़ जाती थी, पार करते हुए बीस मिनट के बाद मैं मोतोहकोन जानेवाले एक मार्ग पर जा पहुँचा।

ऐसी परिस्थितियों में वीर से वीर पुरुष भी किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो जाता। इसलिये ऐसे समय पर, जब विचार अस्थिर हो उठे हों, मन की समता स्थापित करने के लिये कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए। पहले हृदय के स्पंदन

और श्वासक्रिया पर विचार करना चाहिए। हृदय के स्पंदन और फुप्फुस की क्रिया के नियमशील हो जाने पर मन भी शांत हो जाता है। इसी से प्राणायाम की आवश्यकता स्पष्ट है।

अब मैं एक और विचारणीय तथ्य का उल्लेख करता हूँ। [यह लंदन की बात है।] आजकल १९१९ में तो हम जर्मन वायवीय आक्रमणों के आदी हो गए हैं लेकिन उन दिनों हम उनसे थोड़ा बहुत डर ही रहते थे। २९ सितंबर १९१७ की रात को एक भीषण जर्मन वायवीय आक्रमण हुआ। इससे अधिक भयंकर आक्रमण सिर्फ उसी वर्ष की ७ जुलाई की सुबह को हुआ था। मैं नर्सों के साथ ऊपरी मंजिल के एक कमरे में, जहाँ शय्यागत रोगी थे, काम पर था। समय बड़ा उद्वेग-जनक था। जहाँ तहाँ बम छूट रहे थे, गोले फूट रहे थे, तोपें गरज रही थीं। शत्रुओं के वायुयान हमारे सिर के ऊपर मँडरा रहे थे। उनके प्रोपेलरों का शब्द हमें स्पष्ट सुनाई देता था। मैंने आँखें बंद कर कुछ मिनटों तक प्राणायाम किया और इन भयंकर शब्दों के संबंध में मेरा सारा भय जाता रहा। मेरा मन ऐसा शांत हो गया मानो कुछ हो ही नहीं रहा था।

चौदह वर्ष की अवस्था से मैं अपने माता-पिता, संबंधियों, मित्रों, अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा सब श्रेणी के लोगों को प्राणायाम करने की सम्मति देता आ रहा हूँ और इससे सदैव परिणाम भी अच्छा ही रहा है।

एक रोचक घटना सुनिए। अप्रैल १६०३ की बात है, अभी मैंने पहले-पहल लोगों को प्राणायाम करने की सम्मति देना आरंभ किया था। मेरे पिता के कारखाने में कजूजो किमुरा नामक एक मजूर काम करता था। उसकी माता और उसके दो भाई यक्ष्मा से मौत के मुख में जा चुके थे और उसके पिता की मृत्यु स्वरयंत्र के क्षय से हुई थी। इस प्रकार क्षय की ओर उसकी पैतृक प्रवृत्ति थी, और उसके शरीर की गठन भी निर्बल थी। वह इतना पीला और इतना दुबला पतला था कि हर किसी का यही विश्वास था कि वह क्षय का शिकार हो चुका है। निर्बल वह इतना था कि उससे २८ सेर वजन का लोहे का डंडा भी न उठता था। काम से वह अक्सर गैरहाजिर रहता था। कुछ समय से वह औषधों का भी उपयोग कर रहा था पर उससे लाभ कुछ भी नहीं हो रहा था। उसने मुझसे पूछा कि मैं बलिष्ठ कैसे हो सकता हूँ। उस समय अवस्था तो मेरी सोलह वर्ष की ही थी पर प्राणायाम पर मेरा विश्वास दृढ़-मूलक था। मैंने उससे कहा—जो मेरे कहने के अनुसार काम करो तो तुम्हें जुलाई से पहले ही अपना खोया हुआ बल प्राप्त हो जाय।

(१) प्रतिदिन प्रातःकाल ६ बजे उठो, सारे शरीर पर शीतघर्षण के बाद खुली खिड़की के सामने दस से पंद्रह मिनट तक प्राणायाम करो, उसके बाद बीस मिनट तक खेतों (खुली हवा) में टहलो, तब जलपान करो।

(२) एक दिन में तीन बार भोजन करो, और बीच में कुछ न खाओ।

(३) दिन ढले फिर दस से पंद्रह मिनट तक प्राणायाम करो।

(४) सोने के पहले शीत-घर्षण के बाद फिर दस से पंद्रह मिनट तक प्राणायाम करो।

दस दिन तक प्राणायाम करने के बाद उसे तन-मन दोनों से शांति का अनुभव होने लगा। उसके स्वास्थ्य में लगातार उन्नति होती गई और अब वह उत्तम स्वास्थ्य लाभ कर अपने काम पर है। वह सदैव कहा करता है कि मेरा स्वास्थ्य प्राणायाम का ही शुभ परिणाम है। जब तक जीवन रहेगा तब तक मैं उसका अभ्यास करता रहूँगा।

उस समय से मैं अपने पिता के कारखाने के सब मजूरों को प्राणायाम करने की सम्मति देने लगा।

अब मैं हाल की कुछ थोड़ी सी घटनाओं का वर्णन करता हूँ।

एक कारखाने का एक साझीदार दस वर्ष से आमाशय और अँतड़ियों के जीर्ण शोथ से पीड़ित था। उस समय उसकी उम्र २७ वर्ष की थी। मैंने उसे मार्च १९१२ में प्राणायाम करने की सम्मति दी और उसी वर्ष जुलाई में उसके रोग का निवारण हो गया।

एक सरकारी पदाधिकारी, जिसकी अवस्था २१ वर्ष की थी, तीन वर्ष से नाड़ी-दौर्बल्य और कोष्ठबद्धता से पीड़ित था।

स्नायविक विकार और पेट की पीड़ा के कारण रात को उसे नींद नहीं आती थी, दिन में उसे सिर-दर्द रहता था, उसकी भूख लोप हो गई थी और दिन दिन वह दुर्बल होता जा रहा था। मार्च १९१२ में मैंने उसकी पहली बार जाँच की और उसे प्राणायाम का अभ्यास करने की सलाह दी। छः महीने के बाद वह इन कष्टसाध्य रोगों से मुक्त हो गया, और अब तो उसके रोग के सब लक्षण तिरोहित हो गए हैं और अपने काम में उसे आनंद मिलता है।

संसार में नाड़ी-दौर्बल्य के इतने अधिक रोगियों का होना एक शोकजनक तथ्य है। स्नायविक विकार का कारण केवल नाड़ियों की दुर्वलता ही नहीं है, किन्तु सारे शरीर की साधारण दुर्बलता से भी यह हो जाता है। इसलिये हमें अपने साधारण स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

मैंने इसी प्राणायामोपचार से जीर्ण संधिवात, फुप्फुसावरण-प्रदाह, नाड़ी-दौर्बल्य और कई अन्य रोगों को अच्छा किया है किंतु यह भी कह देना उचित है कि प्राणायाम के साथ साथ मैं औषध-व्यवस्था भी करता हूँ।

जब मैं टोकियो चैरिटी हौस्पिटल मेडिकल कौलेज के बैक्टीरियोलौजिकल इंस्टीट्यूट में असिस्टंट था तो हर रोज यक्ष्मा के रोगियों के रोग का निदान किया करता था। मार्च १९११ में के० यमद नामक तीस वर्ष का एक रोगी मेरे पास आया। उसे ज्वर नहीं था, न खाँसी ही थी और न रक्त-

वमन; इसलिये उसको प्राणायाम करने की सम्मति दी जा सकती थी। निदान करने से मुझे मालूम हुआ कि उसके दाहिने फेफड़े के निम्न भाग और दोनों फेफड़ों के ऊपरी भाग पर क्षय का हमला हो चुका है। अणुवीक्षण यंत्र से उसके थूक की जाँच करने से यक्ष्मा के बहुत कीटाणु मिले। उसका केस गेफ्की की सूची के नं० १० के भीतर आता था। मुझे संदेह था कि कोई और उपद्रव न हो जाय, किंतु यह देखकर कि उसका रोग जीर्ण है और रक्तवमन की ओर उसकी थोड़ी सी भी प्रवृत्ति नहीं है मुझे विश्वास हो गया कि यद्यपि उसका रोग बढ़ गया है तो भी प्राणायाम उसके लिये हितकर होगा। मैंने उसे प्राणायाम के वैज्ञानिक सिद्धांत और उसे करने की विधियाँ समझा दीं। उसे विश्वास हो गया और उसने प्राणा-याम करना आरंभ कर दिया। पहले दिन उसने एक ही दीर्घ श्वासोच्छ्वास लिया और धीरे धीरे वह उनकी संख्या बढ़ाने लगा। दो सप्ताह बीतने पर उसकी शिकायत थी कि मेरा वजन घट रहा है यद्यपि मन की अवस्था अधिक सुख-कर है।

यह क्रम स्वाभाविक ही है। मैंने उसे यह बात समझा दी और कहा कि डरने की कोई बात नहीं, यह एक अच्छा लक्षण है, पाँच और सात सप्ताह के भीतर तुम्हारा वजन धीरे धीरे बढ़ने लगेगा। ठीक मेरे कहने के अनुसार मेरे बताए समय के भीतर उसका वजन घटना रुक गया। उसी वर्ष २२ जून को वह अस्पताल छोड़कर अपने घर लौट गया। तब से

वह रात दिन स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए मेरे आदर्श का अनुसरण कर रहा है। १३ सितंबर १९१२ की उसकी एक चिट्ठी से एक अवतरण नीचे दिया जाता है—

"प्रिय डाक्टर ओटेब, मेरे अस्पताल-वास के दिनों आपने मुझ पर जो दया दिखलाई उसके लिये धन्यवाद। मैं ११ जुलाई को यहाँ आ गया था और तब से स्वास्थ्य के सब नियमों का पालन करते हुए सायं प्रातः खुली हवा में प्राणायाम का अभ्यास करता आ रहा हूँ। रात को मैं अपने सोने के कमरे की खिड़की को थोड़ी खुली रखता हूँ। इस गरमी में मैंने समुद्र-स्नान किए। अस्पताल छोड़ने के बाद मैंने कोई दवा नहीं खाई। आप जानते ही हैं कि मैंने ३० मई को प्राणायाम आरंभ किया था और २२ जून तक प्रतिदिन मेरा वजन घटता रहा, किंतु आप पर विश्वास होने के कारण मैंने प्राणायाम को जारी ही रक्खा। ११ जुलाई को मेरा वजन आधा सेर बढ़ गया था, १ अगस्त को पौन सेर और १ सितंबर को ९ छटाँक।

"आपका अस्पताल छोड़ते समय मेरा वजन १ मन ९½ सेर था और अब मेरा वजन १ मन १२ सेर है। मेरा साधारण स्वास्थ्य अच्छा है और उत्साह भरपूर है। मैं इस सब का कारण प्राणायाम समझता हूँ, उसे मैं कभी नहीं छोड़ूँगा।"

वह बहुधा लिखता है कि मेरा वजन बढ़ रहा है। यद्यपि वह आजकल इचिगो के ठंढे प्रदेश में आठ घंटे प्रति दिन काम

करता है फिर भी अब उसे जुकाम नहीं सताता है। उसके स्वास्थ्य में निरंतर उन्नति हो रही है और मेरा विश्वास है कि वह अंततः एक ऐसे रोग से छुटकारा पा जायगा जिसने उसे छोटी ही अवस्था में मृत्यु-मुख में भेज दिया होता।

यहाँ पर मैं प्राणायाम से यक्ष्मा का संबंध स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। साधारण नियम तो यह है कि क्षय के रोगी के लिये प्राणायाम का अभ्यास करना लाभदायक नहीं है। परंतु कुछ दशाओं में प्राणायाम की सम्मति दी जा सकती है।

नीचे लिखी दशाओं में प्राणायाम करना उचित नहीं है—

(१) उस रोगी के लिये जिसका रोग बढ़ गया हो।

(२) उस रोगी के लिये जो रक्तवमन करता हो, चाहे रक्त कितना ही कम क्यों न आता हो।

(३) उस रोगी के लिये जो घोर कास से पीड़ित हो।

(४) उस रोगी के लिये जिसका ताप १००° डिगरी से ऊपर हो।

अब तक मैंने यक्ष्मा के बहुत से रोगियों को प्राणायाम करने की सम्मति दी है और प्रत्येक दशा में फल भी उत्तम रहे हैं। किंतु कठिनता उस रोगी को पहचानने में है जिसे प्राणायाम करने की सम्मति दी जा सके। मैंने टोकियो चैरिटी हौस्पिटल में यक्ष्मा के रोगियों की एक बहुत बड़ी संख्या का निदान किया है किंतु उन सबमें से केवल तीन ऐसे थे जिन्हें मैं प्राणायाम का अभ्यास करने की सम्मति दे सका।

जो रोगी प्राणायाम का अभ्यास करे उसे बिना फेफड़ों को बहुत अधिक फुलाए ही धीरे धीरे साँस लेना चाहिए। प्राणायाम से शरीर की गरमी बढ़ती है इसी से आरंभ में कुछ दिन तक वजन घटता है क्योंकि गरमी से तंतुओं में अनावश्यक चरबी का जमा होना बंद हो जाता है।

आजकल क्षय की चिकित्सा के कई उपाय हैं किंतु विश्राम चिकित्सा डाक्टरों में अधिक प्रचलित है।

बिस्तरे पर बहुत समय तक लेटे रहने से किसी समय रोगी का वजन बढ़ जाता है। कारण यह है कि शरीर के किसी भी अंग अथवा फुप्फुस का व्यायाम नहीं होता और चरबी त्वचा के नीचे और तंतुओं में जमा भर हो जाती है। इसलिये जब तक रोगी के लक्षण भयावह न हों तब तक उसे स्वस्थ मनुष्य की तरह स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिए। कुछ नियम यहाँ पर दे दिए जाते हैं—

(क) नियत समय पर ताजी हवा में मध्यम रीति से टहलो वा काम करो किंतु थकावट न आने दो। सदैव छाती को चौड़ी और शरीर को सीधा रक्खो।

(ख) समय पर भोजन करो और फिर कुछ न खाओ। आमाशय और अँतड़ियों के बल को और भूख को बढ़ाने के लिये यह जरूरी है।

(ग) रात दिन ताजी हवा में साँस लेने का ध्यान रक्खो।

(घ) दिन में हमेशा ऐसे स्थान पर रहो जहाँ सूर्य का प्रकाश बे-रोक-टोक प्रवेश करता हो।

(ङ) ऐसे कमरे में सोओ जहाँ दिन भर प्रकाश बे-रोक-टोक प्रवेश करता रहा हो।

मैंने यक्ष्मा के प्रतिषेध के लिये प्राणायाम करना आरंभ किया था, अपने ऊपर उसके आरोग्यप्रद प्रभावों और अपने किए कई प्रयोगों से मुझे विश्वास है कि यदि स्वस्थ मनुष्य प्रति दिन बीस मिनट प्राणायाम करे तो उसे कभी यक्ष्मा न होगा।

प्राणायाम के द्वारा यक्ष्मा की चिकित्सा में मेरा अनुभव बहुत थोड़ा है, इसलिये यक्ष्मा के प्रत्येक रोगी को मैं प्राणायाम का आश्रय लेने की सम्मति नहीं दे सकता।

प्राणायाम की विधियाँ

हम तीन या कभी कभी पाँच सप्ताह तक बिना आहार किए जीवित रह सकते हैं किंतु यदि हमारी श्वासक्रिया दस मिनट के लिये भी रुक जाय तो हम मर जायँ। अतएव मनुष्य-मात्र के लिये वायु भोजन से अधिक आवश्यक है और श्वास-क्रिया भोजन से।

गहरे निःश्वास से वायु को फुप्फुस में प्रवेश कराना और दीर्घ प्रश्वास से उसे फुप्फुस से बाहर निकालना ही प्राणायाम है। यह सीधी सादी क्रिया, जिसे हर कोई कर सकता है, बड़ी प्रभावशालिनी है; पर इसका बहुत कुछ वास्तविक प्रभाव न्यूनाधिक प्राणायाम की भिन्न भिन्न विधियों पर भी निर्भर है।

आज हम आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्राणायाम का अध्ययन कर रहे हैं परंतु इससे यह न समझना चाहिए कि प्राचीन काल में लोग उससे अनभिज्ञ थे। उस समय में भी बहुत से विद्वानों और पुरोहितों ने प्राणायाम का अध्ययन किया था और वे उसकी कई विधियाँ जानते थे।

संसार में आते ही हर कोई स्वाभाविक प्राणायाम की एक विधि का अनुसरण करता है। किसी नवजात शिशु को देखिए। जब वह पहले पहल रोने का प्रयत्न करता है तब वह

धीरे धीरे पहले वायु को अंदर खींचता है और रोने के शब्द के साथ वह वायु फिर धीरे धीरे बाहर निकल जाती है। इस स्वाभाविक प्राणायाम का प्रभाव रक्तसंचार के द्वारा शिशु के सारे शरीर पर पड़ता है। कैसे ? यह मैं फिर समझाऊँगा। इसके अतिरिक्त शिशु का श्वास-व्यापार प्रमित, शांत और स्वाभाविक होता है। ज्यों ज्यों वह बड़ा होता जाता है इस स्वाभाविक, शांत, दीर्घ श्वास-व्यापार में कई प्रकार से बाधा पड़ने लगती है। उसे चुस्त और असुविधाजनक कपड़े पहनाए जाते हैं, सीधे बैठने की आदत नहीं डाली जाती और और भी कई विपरीत परिस्थितियों में उसे रहना पड़ता है। फल यह होता है कि धीरे धीरे उसकी साँस छोटी, उथली और अनियमित हो जाती है। इस प्रकार रात दिन अशुद्ध वायु फेफड़ों में जाती है। दूसरी ओर कई प्रकार के कीटाणु—क्षय के, निमोनिया के और और कई रोगों के—फेफड़ों पर हमला करने की घात में लगे रहते हैं। जब फुप्फुस निर्बल पड़ जाते हैं, उनकी प्रतिबंध शक्ति नष्ट हो जाती है तब वे बे-रोक-टोक उनमें घुस जाते हैं। इससे कई प्रकार के भयंकर रोग पैदा होते हैं जिनका हमें आजकल अस्पतालों में और अन्यत्र अनुभव होता है। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है त्यों त्यों लोगों को अधिकाधिक भयावह दशाओं में रहना पड़ता है। इसलिये अगर इन भयंकर कीटाणुओं के आक्रमणों से बचना चाहें तो लोगों को चाहिए कि सभ्यता की वृद्धि के

साथ साथ अपने फेफड़ों को मज़बूत बनावें और उनकी प्रतिबंध शक्ति को बढ़ावें।

प्राचीन काल में लोगों का रहन सहन सीधा सादा था। प्राणायाम करनेवाले विद्वान् और पुरोहित तो पवित्र वायु का सेवन करते ही थे परंतु साधारण लोग भी शिशुओं की भाँति शुद्ध हवा में साँस लिया करते थे। 'न्यू टेस्टामेंट' में लिखा है कि ईसू मसीह परमात्मा से प्रार्थना करने के लिये और आकाश की ओर देखने के लिये अपने चेलों के साथ अक्सर एक पहाड़ पर चढ़ा करते थे। प्राचीन काल के लोगों में और विशेष कर पूर्व के रहनेवालों में एक बड़ी अच्छी प्रथा प्रचलित थी। वे प्रातःकाल शीतल जल से स्नान कर सूर्य की प्रार्थना करते थे। सूर्य को वे देवता मानते थे। वैकुंठ और सूर्य की पूजा करना या खुली हवा में ऋचाओं का उच्चारन करना अथवा प्रार्थना करना भी एक प्रकार से प्राणायाम करना ही है। आजकल के लोग सूर्य की प्रार्थना करना मिथ्या विश्वास मानें तो मान सकते हैं किंतु वर्तमान चिकित्सा-शास्त्र बतलाता है कि उसका स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसी कारण प्राचीन लोग हृष्ट-पुष्ट होते थे।

भारतवर्ष में आज से तीन हजार वर्ष पहले ब्राह्मणों ने प्राणायाम की एक विधि का आविष्कार कर लिया था। फिर बुद्ध भगवान् ने पद्मासन का प्रचार किया*। धीरे धीरे चीन,

* डा० ओटेब का यह विचार कि पद्मासन जिसे जापानी भाषा में

जापान और यूरप में प्राणायाम की भिन्न भिन्न विधियों का आविष्कार हुआ।

पाँच सौ वर्ष हुए, प्रसिद्ध जापानी पुरोहित हकुइन जेंशी ने उदरगत श्वासक्रिया की एक विधि निकाली थी। यह भी प्राणायाम का ही एक प्रकार है। इन ऋषियों और पुरोहितों के अलावा और लोग भी अपनी अपनी विधियों के मुताबिक प्राणायाम किया करते थे। उनका उद्देश्य मन का संस्कार रहता था, वे चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से प्राणायाम के आरोग्यप्रद प्रभाव को नहीं जानते थे पर मन के संस्कार के साथ साथ उनके शरीर भी बलिष्ठ हो जाते थे।

यहाँ पर प्राणायाम की कुछ पुरानी विधियों का वर्णन कर देना उचित होगा। बुद्ध भगवान् के आविर्भाव के पहले ही ब्राह्मणों ने जिस विधि* का आविष्कार कर लिया था, वह इस प्रकार थी—

'जजन' कहते हैं प्राणायाम की एक विधि है, गलत है। हाँ, योगशास्त्र में पद्मासन बाँधकर प्राणायाम करने की व्यवस्था अवश्य है। वैसे ही यह भी गलत है कि बुद्ध ने पद्मासन का आविष्कार किया; बुद्ध के अवतरित होने के न मालूम कितने समय पहले उसका आविष्कार हो चुका था। बुद्ध की जितनी मूर्त्तियाँ मिली हैं सबमें वे पद्मासन बांधे हुए हैं, शायद इसी से डा० साहब इस परिणाम पर पहुँचे हैं।—अनुवादक।

* इस विधि के सम्यक् वर्णन के लिये प्रस्तावना देखिए। डा० ओटेब ने मूल में इसे बहुत गड़बड़ करके लिखा है।—अनुवादक।

(१) दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नथने को बंद कर बाएँ नथने से (गहरी) साँस खींचो।

(२) तब उसी हाथ की तर्जनी से बाएँ नथने को बंद कर दाहिने नथने से धीरे धीरे साँस छोड़ दो। इसी तरह दाहिने नथने से साँस लेकर बाएँ नथने से धीरे धीरे छोड दो। इस प्रकार नित्य सुबह शाम प्राणायाम करना चाहिए।

बुद्ध ने जिस पद्मासन नामक विधि का आविष्कार किया था वह यह है—

(१) चटाई वा दरी बिछाकर बैठ जाओ, नितंबों के नीचे गद्दी रख लो और इस प्रकार पलथी मारो कि दहिना पाँव बाईं जाँघ पर और बायाँ पाँव दहिनी जाँघ पर रहे।

(२) हथेली ऊपर करके दहिने हाथ को दोनों टाँगों के बीच में रखो। फिर हथेली पर बाएँ हाथ की हथेली को इस तरह रखो कि दोनों अँगूठे एक दूसरे के सम्मुख हो जायँ।

(३) शरीर को सीधा रखो, आँखें खोल दो और धीरे धीरे नथनों से साँस लेना आरंभ कर दो।

प्रसिद्ध जापानी विद्वान् हीरत की प्राणायाम करने की विधि यह थी—

(१) पीठ के बल बिस्तरे पर लेट जाओ और जितना हो सके टाँगों को तानो।

(२) उदरगत श्वासक्रिया करो। यह क्रिया पेड़ू की पेशियों को काम में लाने से की जाती है।

(३) श्वासों की संख्या उँगली पर गिनते जाओ। सौ श्वासों के बाद टाँगों को ढीला कर दो जिससे वे प्रमित अवस्था में आ जायँ।

जैसा मैंने पहले कहा है, प्राणायाम का ख़ुद ही अच्छा प्रभाव होता है, दूसरी कठिन विधियों के अनुसरण की आवश्यकता नहीं होती। पर बात जो बहुत आवश्यक है वह यह है कि एक बार जब हम प्राणायाम के अच्छे प्रभाव को पूरे तौर से समझ जायँ तो उसे जीवन पर्यंत करते रहें। मनुष्य का मन स्वभाव से ही परिवर्तनशील होता है। हो सकता है कि हमने हमेशा जारी रखने का संकल्प कर प्राणायाम को आरंभ किया हो। फिर भी संदेह या असावधानी के अवसर आते हैं जब कुछ दिन के लिये उसे छोड़ देने का जी करता है। और होते होते वह हमेशा के लिये छूट जाता है। मेरे कई जापानी मित्रों और और लोगों ने इस बात को सिद्ध किया है। अपने समाज और राष्ट्र के प्रति हमारा कर्तव्य है कि हम अपने शरीर को स्वस्थ रक्खें। अगर हमें यक्ष्मा हो गया तो एक तो हम राष्ट्र के लिये कोई काम नहीं कर सकते और दूसरे अनजान में औरों के पीछे रोग लगाकर उनकी मौत के कारण बनते हैं। इस तरह स्वयं अपने देश को हानि पहुँचाते हैं और मानव जाति के विरुद्ध पाप-संचय करते हैं। इसलिये यदि हमें विश्वास हो जाय कि प्राणायाम में यक्ष्मा का प्रतिबंध करने की शक्ति है और साथ ही वह शरीर को

स्वस्थ और मन को शांत रखता है तो एक बार उसका प्रयोग करने की ठान लेने पर उसे जारी रखना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

विषय को अच्छी तरह स्पष्ट करने के उद्देश्य से यहाँ पर मुझे प्राणायाम की भिन्न भिन्न विधियों का वर्णन करना ही पड़ता है; परंतु मैं अपने आपको किसी विधि-विशेष से नहीं जकड़ रखता हूँ, आपके लिये भी यह आवश्यक नहीं है कि आप नीचे लिखी विधियों के अनुसार ही प्राणायाम करें। प्राणायाम करने के लिये आप चाहे जिस विधि से और चाहे जिस समय स्वतंत्र हैं। किंतु एक समय नियत कर नित्य प्रति उसी समय किसी नियत स्थान पर प्राणायाम करना उचित और आवश्यक है। हो सके तो प्रातःकाल खुली खिड़की के सामने या बगीचे में प्राणायाम करना चाहिए। दिन भर का काम खतम कर लेने पर तथा सोने के पहले दस मिनट प्राणायाम करना भी लाभदायक है।

प्राणायाम करने की भिन्न भिन्न विधियाँ नीचे लिखी जाती हैं—

(१) बैठकर प्राणायाम करने की विधि—पलथी मारकर बैठ जाओ, शरीर सीधा, हाथ घुटनों पर, छाती कुछ चौड़ी और आँखें किसी बिंदु पर लगी हुई या कुछ बंद रहें। अब मुँह बंद करके धीरे धीरे नाक से साँस लो।

(२) लेटकर—पीठ के बल सुख से लेट जाओ; टाँगें कुछ तनी हुई और हाथ जाँघों के बराबर बिस्तरे पर रहें। इस स्थिति में स्वाभाविक रीति से प्राणायाम करो।

(३) चलते हुए—चलते हुए शरीर सीधा, हाथ जाँघों के बराबर और कंधे पीछे की ओर रखो और जैसे मन में आवे प्राणायाम करो।

(४) खड़े होकर—जापान में इस विधि का ही सबसे अधिक प्रचार है। यह विधि कई प्रकार की हो सकती है—

(क) ध्यानस्थ होकर सीधे खड़े हो जाओ [देखो चित्र(क)], हाथ नितंबों पर रखो और मुँह बंद करके दीर्घ निःश्वास लो। साँस खींचते हुए दोनों हाथों को उठाते जाओ यहाँ तक कि दोनों

(क) और (ख)
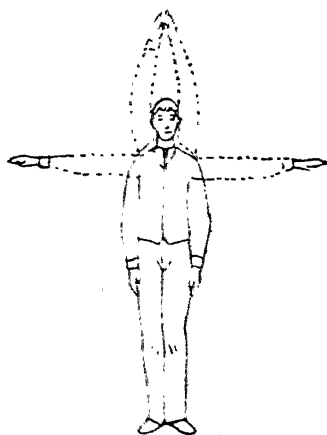
हाथ और कंधे एक सीध में हो जायँ। तीन सेकिंड तक इस दशा में रहकर हाथों को नीचे लाते हुए धीरे धीरे प्रश्वास छोड़ो। निःश्वास की अपेक्षा प्रश्वास में कम समय लगना चाहिए।

(ख) चित्र (क) की सी स्थिति में हो जाओ। निःश्वास लेते हुए दोनों हाथ धीरे धीरे उठाओ, यहाँ तक कि दोनों हथेलियाँ सिर के ऊपर एक दूसरे को छू जायँ; साथ ही पाँवों के अँगूठों पर धीरे धीरे उठते जाओ। तीन सेकिंड तक इस अवस्था में रहकर फिर प्रश्वास छोड़ते हुए हाथों को नीचे लाओ और पहले की स्थिति में हो जाओ।

(ग) ध्यानस्थ होकर खड़े हो जाओ [चित्र (ग)], हाथों को अपने सामने ऐसे फैलाओ मानो तैरना चाहते हो। फिर उन्हें नीचे छोड़ो और निःश्वास लेते हुए इस तरह पीठ पीछे पहुँचाओ कि दोनों हथेलियाँ वहाँ मिल जायँ। तीन सेकिंड तक इस अवस्था में रहकर हाथों को पहले की स्थिति में लाते हुए प्रश्वास छोड़ो।

(घ) जैसा चित्र (घ) में दिखाया गया है उस तरह हाथ कमर पर रखो। निःश्वास लेते हुए शरीर को पीछे की ओर झुकाओ और तीन सेकिंड तक इस स्थिति में रहकर शरीर को पहले की स्थिति में लाते हुए प्रश्वास छोड़ो।

(ङ) चित्र (ग) की सी स्थिति में हो जाओ। दोनों हाथों को सामने की ओर एक दूसरे से समानांतर पर फैलाओ, जोर से मुट्ठियाँ बाँधो और साँस खींचते हुए उन्हें नीचे पीछे

की ओर गिर जाने दो। तीन सेकिंड तक इस दशा में रह-कर साँस छोड़ते हुए उन्हें पहले की अवस्था में ले जाओ।
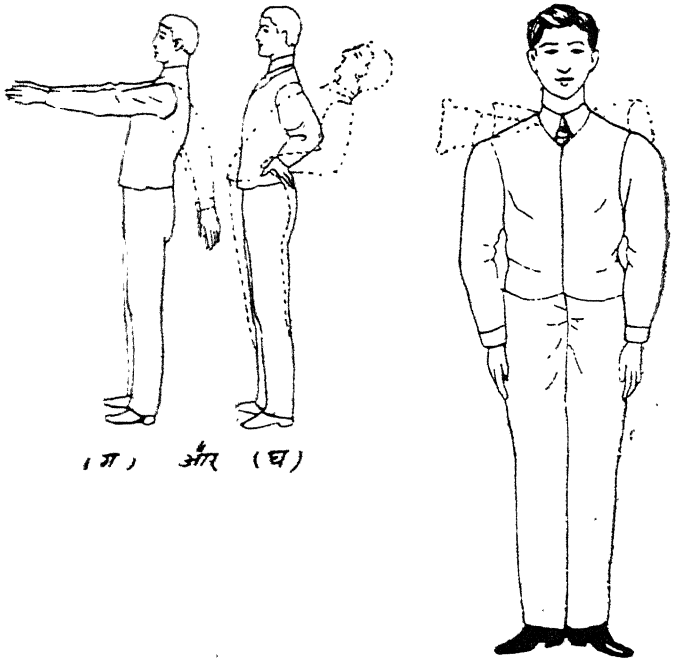
(ग) और (घ)

(ङ)

ऊपर लिखी पाँचों विधियाँ सेनाओं और स्कूलों में अभ्यास के लिये ठीक हैं, किंतु भिन्न भिन्न व्यक्तियों के लिये और खासकर स्त्रियों के लिये वे उतनी सुभीते की नहीं हैं। ऐसे उपयोग के

लिये नीचे लिखी रीति साधारणतया अच्छी है। मैं इसी विधि के अनुसार नित्य शाम-सुबह प्राणायाम किया करता हूँ।

एटेंशन की स्थिति में (खड़े) हो जाओ, हाथों को जाँघों के बराबर रक्खो, निःश्वास लेते हुए कंधे उठाओ और उन्हें आगे से पीछे की ओर घुमाते जाओ। इस उठी हुई दशा में तीन सेकिंड तक रखने के बाद प्रश्वास छोड़ते हुए उन्हें पीछे से आगे की ओर घुमाते हुए पहले की स्थिति में ले आओ (देखो चित्र (ङ) में बिंदुओं से अंकित रेखाएँ)।

देहात में टहलते हुए, गली में, बैठक के कमरे में, घोड़े की पीठ पर, गाड़ी में, मोटर पर या घर पर विश्राम करते हुए जहाँ कहीं कोई चाहे इस विधि का उपयोग कर सकता है। पर अगर वायु दूषित हो तो यह अभ्यास न करना ही उत्तम है।

ये सब विधियाँ बहुत सरल हैं, एक छोटा बच्चा भी इन्हें कर सकता है।

गायन सरीखे कुछ आमोद भी ऐसे हैं जिनसे बिना प्रयास प्राणायाम किया जा सकता है। एक चिकित्सक की बात है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा। आठ वर्ष तक वह क्षय से पीड़ित रहा। पर आठवें वर्ष "गिदायु" नामक जापानी गीत को गाकर अच्छा हो गया। गाना अच्छी तरह तभी गाया जा सकता है जब गानेवाले की श्वास-संबंधी सब इंद्रियाँ और खासकर फेफड़े अच्छे खासे तंदुरुस्त हों। जिन्हें स्वरयंत्र का या कंठ का प्रदाह हो या फेफड़े का कोई रोग हो वे स्वस्थ

मनुष्य जैसा अच्छा गाना नहीं गा सकते। गाना अगर भली भाँति गाया जाय तो निश्चय श्वासेंद्रियाँ बलवती हो जायँ। प्राणायाम को भी गायन की ही एक विधि मानना चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि गाने की विधि अच्छी हो, गाते समय शरीर सीधा रहे और नथनों से साँस लिया जाय।

इसके अतिरिक्त नीचे लिखे तीन नियमों का पालन करना चाहिए—

(१) पहले ही पहल एकदम दस मिनट तक प्राणायाम नहीं करना चाहिए। पहले दिन सुबह को प्राय: एक मिनट में दो या तीन गहरे साँस लेने चाहिएँ, शाम को दो मिनट में पाँच या छः, दूसरे दिन सुबह को तीन मिनट में सात या नौ और शाम को चार मिनट में करीब दस बारह।

इस प्रकार दीर्घ श्वासों की संख्या धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए। ऐसा करने से पाँच दिन में दस मिनट के अंदर तीस साँस लिए जा सकेंगे। ९ सेकिंड दीर्घ निःश्वास के लिये, तीन वायु को फुप्फुस में रोकने के लिये और आठ दीर्घ प्रश्वास के लिये—इस प्रकार एक श्वासोच्छ्वास में २० सेकिंड लगने चाहिएँ अर्थात् एक मिनट में तीन बार प्राणायाम किया जा सकता है। इस तरह प्राणायाम करना है तो कठिन पर अगर आदमी लगा रहे तो होते होते वह आसानी से ऐसा कर सकेगा। हाँ, और यह भी न भूलना चाहिए कि दीर्घ निःश्वास और प्रश्वास नथनों से और वह भी धीरे धीरे लिए और छोड़े जाने चाहिएँ

पर प्रश्वास मुँह से भी छोड़ा जा सकता है। मेरे बहुत से मित्रों को प्राणायाम आरंभ करते समय अचानक चक्कर हो आया था। यह इंद्रिय-व्यापार-शास्त्र संबंधी लक्षण है। आरंभ में प्रचंडता से या बहुत देर तक प्राणायाम करने से ऐसा हो जाया करता है। कारण यह है कि दृढ़, दीर्घ निःश्वास से वक्षःस्थल में रक्त का भार घट जाता है और मस्तिष्क के तंतुओं में रुधिर की कमी हो जाती है। और दृढ़-दीर्घ प्रश्वास के समय वक्षःस्थल में रक्त-भार बढ़ जाता है और छाती से रुधिर तेज़ी के साथ मस्तिष्क में लौट आता है और वहाँ रक्त की अधिकता हो जाती है। साधारण प्राणायाम से भी वक्षः-स्थल-गत भार में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो ही जाता है पर प्रचंड प्राणायाम से यह परिवर्तन बहुत ही अधिक होता है। इससे पहले तो मस्तिष्क में रक्त की बहुत कमी हो जाती है और फिर बहुत अधिकता हो जाती है। फल यह होता है कि मस्तिष्क की नाड़ियों की क्रिया में गड़बड़ी पड़ जाती है। इसी से चक्कर आ जाता है।

चक्कर आने का एक और भी कारण है। बड़े ज़ोर का साँस लेने से हवा की ठंढी लहर कंठ, स्वरयंत्र, टेंटुए और वायुप्रणाली की दीवारों के स्नायुसूत्र और विशेषकर मस्तिष्क की नाड़ियों के सूत्र को उत्तेजित करती है। प्रकारांतर से इस उत्तेजना का अनुभव मस्तिष्क के अंतर्नियंत्रक केंद्र में होता है। यही अनुभव चक्कर का कारण होता है।

(२) लोगों में यह भ्रम बहुत फैला हुआ है कि रात को प्राणायाम करना लाभदायक नहीं होता। कारण यह बतलाया जाता है कि रात को प्रकृति कार्बन डाइ औक्साइड का प्रश्वास छोड़ती है और औक्सिजन का निःश्वास लेती है। वायु में इस नियम के अनुसार साधारणतः बहुत थोड़ा परिवर्तन होता है। बल्कि रात की समीर दिन की अपेक्षा अधिक शीतल और पवित्र होती है। इसलिये रात का प्राणायाम दिन के प्राणायाम की अपेक्षा कम लाभदायक नहीं होता।

(३) प्राणायाम और शारीरिक व्यायाम के संबंध में लोगों में बहुत गलतफहमियाँ हैं, इसलिये यहाँ पर उनका संबंध स्पष्ट कर दिया जाता है। जापान में मेरे एक मित्र मेरे पास आये और बोले, मैं प्रातःकाल नित्य खेतों में दौड़ लगाया करता हूँ, इससे मेरा प्राणायाम हो जाता है। मैंने जवाब में कहा, "दौड़ना आपके लिये अच्छा व्यायाम है लेकिन उससे प्राणायाम नहीं होता। जब तक आप दौड़ते रहते हैं और उसके कुछ देर बाद तक भी आपका उथला साँस चलता है। खेल-कूद के प्रेमी युवक बहुधा ऐसी गलती किया करते हैं। धीरे धीरे शारीरिक व्यायाम को बढ़ाइए। आपको मालूम होगा कि आपकी साँस उथली, छोटी और अनियमित होती जा रही है। ऐसी दशा में साँस लेने के लिये श्वास-रोगी की तरह छाती और पेडू की सब पेशियों को काम में लाना पड़ता है। इसमें पहले तो ऐसा मालूम होता है जैसे हम गहरे और लंबे

साँस ले रहे हों पर असल में बात ऐसी नहीं होती है। उल्टे उथला साँस लेना पड़ता है। दीर्घ श्वासोच्छ्वास (प्राणायाम) और लघु श्वासोच्छ्वास से शरीर पर जो प्रभाव पड़ते हैं उनमें बड़ा अंतर है।

क्रीकेट, फुटबौल, बेसबौल, टेनिस, खेना, तैरना, दौड़ना आदि जितने व्यायाम हैं सब सहज ही शरीर की उन्नति करते हैं, इसलिये सबको प्रति दिन नियत समय पर व्यायाम करना चाहिए। पर उससे साथ ही प्राणायाम भी हो जाता है यह महज गलत खयाल है। प्राणायाम किसी दूसरे समय करना चाहिए। उसके लिये यह जरूरी है कि शरीर और मन दोनों विश्रांत हों।

शरीर के तंतुओं में औक्सिजन और पुष्टिकारक भोजन के मिश्रण से शक्ति पैदा होती है। अधिक व्यायाम करनेवालों को भोजन भी अधिक ही करना पड़ता है। आहार-नली के द्वारा तंतुओं में काफी पुष्टि पहुँचाने के लिये काफी खुराक जरूर ही चाहिए। साथ ही फेफड़ों के द्वारा औक्सिजन भी बहुत खींचना पड़ता है। इस प्रकार अधिक पुष्टि और अधिक औक्सिजन के मिश्रण से कार्बन डाइ औक्साइड भी अधिक पैदा होता है। साधारण श्वास प्रश्वास से जितना कार्बन डाइ औक्साइड बाहर निकलता है उससे कहीं कम प्राणायाम करते समय निकाला जा सकता है। इंद्रिय-व्यापार-शास्त्र संबंधी खोजों से इस बात का आसानी से पता लग सकता है। इसलिये दौड़ते हुए या

शारीरिक व्यायाम करते हुए प्राणायाम करना असंभव है। और यदि किसी ने ऐसी दशा में प्राणायाम करने का दुस्साहस किया तो उसका शरीर कार्बन डाइ ऑक्साइड से व्याप्त होकर विषाक्त हो जायगा।

प्रश्वसित वायु की अपेक्षा निश्वसित वायु में ऑक्सिजन का तनाव अधिक और कार्बन डाइ ऑक्साइड का तनाव कम होता है। अर्थात् निश्वसित वायु में प्रश्वसित वायु की अपेक्षा अधिक ऑक्सिजन और कम कार्बन डाइ ऑक्साइड होता है। रक्त और वायु के बीच गैसीय तनाव का जितना अधिक अंतर होगा उतने ही शीघ्र गैसीय विनिमय भी होगा। अतएव दौड़ते हुए या उसके बाद थोड़ा देर तक अधिक शीघ्रता से ताजी हवा के निश्वास लेने पड़ते हैं। इससे फुप्फुस के तंतुओं का रुधिर ऑक्सिजन को अधिकता से खींच लेता है। साथ ही ऐसी दशा में साधारण से अधिक प्रश्वास भी छोड़ने पड़ते हैं और कार्बन डाइ ऑक्साइड अधिकता से बाहर निकलता है। इसी लिये शारीरिक व्यायाम के विस्तार के अनुसार श्वासक्रिया बढ़ती और उसी के अनुसार नाड़ी-स्फुरण भी बढ़ता है। इससे शुद्ध या धमनियों का रक्त शरीर के सब तंतुओं में पहुँचता है और वहाँ से अशुद्ध या शिराओं का रक्त फेफड़ों में वापिस चला आता है। गैसीय विनिमय यहीं होता रहता है। अब अगर ऐसे समय पर हृदय का स्पंदन रुक जाय या श्वासावरोध हो जाय तो आदमी मर जाय।

प्रत्यक्ष के लिये प्रमाण की क्या आवश्यकता है ? हर कोई इस बात का स्वयं अनुभव कर सकता है। आधा घंटा दौड़िए, आपको अवश्य छोटी छोटी और तेज साँस आने लगेगी। उस समय यदि स्पाइरोमीटर से फुप्फुस की वायु-प्रधारक शक्ति नापी जाय तो बहुत कम निकलेगी। इसके अतिरिक्त दौड़ते समय तथा उसके थोड़ी देर बाद तक श्वास और नाड़ी साधारण दशा की अपेक्षा अधिक तीव्रता से चलती हैं। इसलिये उस समय ठीक तरह से प्राणायाम करना असंभव होता है।

मैंने सुना है कि व्यायामशिक्षक अपने विद्यार्थियों से दौड़ते समय या शीघ्र उसके बाद ही प्राणायाम कराने का प्रयत्न करते हैं। शायद वे समझते हैं कि प्राणायाम करते समय साधारण श्वास प्रश्वास की अपेक्षा अधिक ऑक्सिजन खींचा जा सकता है। यह भ्रम है। प्राणायाम श्वासक्रिया, रक्तसंचालन और मन का नियमन करता है। प्राणायाम स्कूल खुलने के पहले या व्यायाम सिखाते समय कठिन व्यायामों को आरंभ करने के पहले या उनको करने के दस मिनट बाद कराना चाहिए—दस मिनट से पहले नहीं।

व्यायाम-शिक्षकों का कर्तव्य विद्यार्थियों की स्वास्थ्य-वृद्धि करना है। ऊपर लिखा नियम इसके पालन में उनका सहायक होगा। आशा है वे इसे ध्यान में रखेंगे।

इस अध्याय के अंत में यह दुहरा देना उचित होगा कि प्रातःकाल नहा-धोकर खुली खिड़की के सामने खड़े होकर, या

अगर हो सके तो बगीचे में, प्राणायाम करना चाहिए। रात को सोने से पहले भी उसी प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। जब ठंढ इतनी ज्यादे हो कि खिड़की खुली न रखी जा सके तो पहले कमरे को हवा से खूब भर लेना चाहिए और तब खिड़की बंद करके प्राणायाम करना चाहिए।

पहले भी कह चुका हूँ और अब भी कह देता हूँ कि किसी खास विधि के अनुसार प्राणायाम करने की जरूरत नहीं, जिस विधि से जो चाहे प्राणायाम कर सकता है। किंतु यह न भूल जाना चाहिए कि निःश्वास और प्रश्वास गहरे हों और धीरे धीरे लिए और छोड़े जायँ।

सारे शरीर पर प्राणायाम के आरोग्यप्रद प्रभाव

प्राणायाम के द्वारा बहुत सी दशाओं में मैंने निर्बलों को बलवान् और स्वस्थ बनाया है और कइयों को यक्ष्मा का शिकार होने से बचाया है। जिन निश्चित कारणों से ये फल प्राप्त हुए हैं उन्हें इनके साथ साथ मैं विस्तार से समझाता हूँ। जब यह विषय अच्छी तरह समझ में आ जायगा तो खुद ब खुद ही जबर्दस्त सबूत मिल जायँगे। मैंने कहा है कि प्राणायाम को एक बार आरंभ कर आजीवन करते रहना चाहिए। यह कोई तभी कर सकता है जब उसके द्वारा अपने शरीर पर होनेवाले आरोग्यप्रद प्रभाव अच्छी तरह उसकी समझ में आ जायँ। इस पुस्तक में आदि से अंत तक महत्त्व का विषय यही है। यहाँ पर हम इसी विषय पर विचार करने जा रहे हैं।

गहरा श्वास लेने से फेफड़ों का ही नहीं छाती की, उदर की और ग्रीवा की पेशियों का और वक्षःस्थल की तथा उदर की इंद्रियों का भी व्यायाम होता है। व्यवच्छेद शास्त्र की दृष्टि से साधारण श्वासोच्छ्वास और प्राणायाम में जो अंतर हैं उनमें से कुछ नीचे दिखलाए जाते हैं।

प्रमित निःश्वास वक्षोदरमध्यस्था और अंतरपार्श्विका बहिःस्था पेशियों के आकुंचन से होता है। और प्रमित प्रश्वास फुप्फुस की स्थिति-स्थापकता से और पूर्वोक्त दोनों पेशियों के ढीले होकर पहले की दशा में आने की क्रिया से होता है। इस प्रकार ये प्रमित श्वासक्रियाएँ अनैच्छिक रूप से सदा होती रहती हैं।

प्रमित श्वास-क्रिया से वक्षोदर मध्यस्था, तथा अंतर-पार्श्विका बहि:स्था पेशियों का व्यायाम होता है।

दीर्घ श्वासोच्छ्‌वास के समय नीचे लिखी अठारह पेशियाँ इच्छानुसार काम में लाई जा सकती हैं—

दीर्घ नि:श्वास से	विषय त्रिकोण	पेशी
	पार्श्विका उद्वहिनी लघ्वी	,,
	पार्श्विका उद्वहिनी बृहती	,,
	आरी के आकार की ऊर्ध्वापरा	,,
	उर: कर्णमूलिका	,,
	समानांतर चतुरस्रा	,,
	उरश्छादिनी बृहती	,,
	उरश्छादिनी लघ्वी	,,
	आरी के आकार की महती	,,
दीर्घ प्रश्वास से	आरी के आकार की अध:अपरा	,,
	पृष्ठदेशीया बृहत्तमा	,,
	पार्श्विकांतरिका अंत:स्था	,,
	वक्ष:स्थल लंबिनी	,,
	सरल उदरच्छदा	,,
	वक्रोदरच्छदा अंत:स्था	,,
	वक्रोदरच्छदा बहि:स्था	,,
	कटि चतुरस्रा	,,

इन पेशियों पर तो प्राणायाम का प्रभाव सीधे पड़ता है, पर प्रकारांतर से भी निम्नलिखित पेशियों और उपास्थियों का व्यायाम भी हो जाता है।

प्रकारांतर से प्राणायाम का प्रभाव	उर:कंठिका	पेशी
	उरश्चुल्लिका	,,
	मुद्राकार कृमिवदपरा	,,
	कृमिवच्चुल्लिका	,,
	तालूद्वहिनी	,,
	शुंडिकास्था असंबद्धा	,,
	कंठाकुंचनी	,,
	नासारंध्रवर्तिनी पूर्वा	,,
	,, ,, अपरा	,,
	नासिकोद्वहिनी	,,
	मुखाकुंचनी	,,
	चुल्लिका	,,

प्राणायाम के समय उदर की और छाती की इंद्रियों में परिवर्तन होता है। अब उस पर विचार करना चाहिए। गहरा साँस लेने से वक्ष और उदर के मध्य की पेशी पर दबाव पड़ता है जिससे वह उदरकोष में घुसती है। इससे उदरकोष पर वह दबाव पड़ता है और वह फूलने लगता है। पर उदर की दीवार काफी मजबूत होती है, इसलिये उदर एक निर्दिष्ट

सीमा तक ही फूल सकता है। उसके बाद फूलना रुक जाता है। परिणाम में यह दवाव वहाँ से लौटकर पेडू की ओर सब पेशियों पर पड़ता है। दीर्घ प्रश्वास से उदर की सब पेशियाँ सिकुड़ जाती हैं और यकृत, प्लीहा, अग्न्याशय, आमाशय और अँतड़ियों पर के स्नायु-सूत्रों और रक्त-नालियों को सब तरफ से दवाती हैं। इस दवाव से जो उत्तेजना मिलती है उससे इन स्नायु-सूत्रों का व्यापार उन्नत हो जाता है और रक्तसंचार की क्रिया बढ़ जाती है।

उदर के और वक्ष:स्थल के रक्तभार में प्राणायाम से जो परिवर्तन होता है वह और अधिक महत्त्व का है। जब दीर्घ नि:श्वास लिया जाता है तब वक्ष:स्थल का प्रधमन (रक्त-भार) घटता और उदर में का बढ़ता है। और दीर्घ प्रश्वास छोड़ते समय वक्ष:स्थल में का प्रधमन बढ़ता और उदर में का घटता है।

यह हर कोई जानता है कि वायु का प्रवाह उच्च वातावरणीय भारवाले भागों से निम्न वातावरणीय भारवाले भागों की ओर बहता है। यही नियम हमारे शरीर में बहनेवाले रुधिर पर भी लागू होता है। यदि रक्त-भार में परिवर्तन न हो तो श्वासक्रिया बंद हो जाय। यही बात रक्त-संचार के विषय में भी ठीक उतरती है। हृदय हमेशा रक्त-संचार को उच्च प्रधमन में रखे रहता है।

उदर-कोष की स्वाभाविक स्थिति ही कुछ ऐसी है कि और भागों की अपेक्षा वहाँ के रक्त-संचार में अक्सर गड़बड़ी

हो जाती है। आमाशय, अग्न्याशय, प्लीहा तथा अँतड़ियों से जो शिरा का रक्त आता है वह पहले द्वार-शिरा में मिलता है। तब द्वार-शिरा की दो शाखाएँ हो जाती हैं, एक यकृत के दाहिनी ओर दूसरी बाईं ओर चली जाती है। क्रमशः ये शाखाएँ छोटी छोटी केशिकाओं में फूट पड़ती हैं और यकृत के तंतुओं के बीच एक प्रकार से इनका जाल सा बिछ जाता है। फिर इन केशिकाओं के मिलने से यकृतीय शिराएँ बनती हैं जो अधः महाशिरा में मिल जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों के कारण उदरकोष में और विशेषकर यकृत, प्लीहा और अँतड़ियों में रक्त का प्रवाह बहुत मंद रहता है और उसके थम जाने तक की संभावना बनी रहती है।

जब श्वासक्रिया प्रमित रहती है तब भी वक्षःस्थल पर लगभग ६ से ७ मिलिमिटर पारद (Mm. Hg.) तक का थोड़ा निगेटिव भार रहता है इससे हृदय को अपने व्यापार में थोड़ा बहुत सुबीता रहता है। परंतु इसका बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रधमन-मापक यंत्र की सहायता से किए गए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि सबल प्रश्वास से १०८ से २५६ मि० मि० पारद तक का पौजिटिव भार हो जाता है और जोर के निःश्वास से १४० से २५४ मि० मि० पारद तक का निगेटिव भार हो जाता है। इस प्रकार इच्छानुसार उपर्युक्त सीमा तक वक्षः-स्थल के प्रधमन में परिवर्तन किया जा सकता है परंतु इतना अधिक परिवर्तन करना अच्छा नहीं होता है। मैं अपने अनु-

अव से कहता हूँ कि दोनों प्रकार के प्रधमनों में १५ से ३० मि० मि० पारद तक का परिवर्तन करना वांछनीय है। यही सबको नियम बना लेना चाहिए। मध्यम रूप से प्राणायाम करने से यह परिवर्तन किया जा सकता है।

वक्षःस्थल का निगेटिव प्रधमन निःश्वास लेने की शक्ति और फेफड़े के फूलकर तन जाने से होता है, जिसका कारण फेफड़े की स्थितिस्थापक शक्ति है। फेफड़े की पूरी स्थिति-स्थापक शक्ति दीर्घ निःश्वास-जन्य अधिकतम तनाव में दिखाई देती है। यह निगेटिव प्रधमन साधारणतया २५ से ३० मि० मि० पारद तक होता है। अगर इस स्थिति-स्थापक तनाव से २५ मि० मि० पारद का निगेटिव प्रधमन हो जाय तो यदि मध्यमरूप से भी दीर्घ निःश्वास लिया जाय तो वक्षः-स्थल का प्रधमन ४० मि० मि० पारद कम हो जाता है। प्रमित वातावरणीय भार ७६० मि० मि० पारद होता है इस-लिये इस प्रकार के निःश्वास के समय हमारे वक्षःस्थल पर (७६०–४० =) ७२० मि० मि० पारद-भार रहता है। यह भार वातावरणीय भार से न्यून है।

इसके प्रतिकूल, प्रश्वास छोड़ते समय यह निगेटिव भार पाजिटिव भार में बदल जाता है। दीर्घ प्रश्वास के अंत में फेफड़े हद दरजे तक सिकुड़े रहते हैं, उनका स्थितिस्थापक तनाव न्यूनतम होता है। इस समय का माप ६ मि० मि० पारद होता है। ऐसी दशा में यदि मध्यम रूप से छोड़े गए

दीर्घ प्रश्वास से २५ मि० मि० पारद भार हो तो वक्ष:स्थल पर वातावरणीय भार से १९ मि० मि० पारद अधिक अर्थात् (७६० + २५—६ =) ७७९ मि० मि० पारद-भार रहता है। इस प्रकार दीर्घ नि:श्वास और दीर्घ प्रश्वास के समय के भार के बीच (७७९—७२० =) ५९ मि० मि० पारद का अंतर रहता है।

वक्ष:स्थल के सिवाय शरीर के प्राय: सब भाग प्रमित वातावरणीय भार के अधीन रहते हैं। हर कोई जानता है कि जब वातावरणीय भार ३० मि० मि० पारद तक गिर जाता है तो आँधी आ जाती है। वायु के प्रवाह की भाँति शरीर में बहता हुआ रक्त भी उच्च भारवाले भागों से निम्न भारवाले भागों की ओर बहता है।

दीर्घ नि:श्वास से जब वक्ष:स्थल में निगेटिव भार होता है तब उदर में पौजिटिव होता है। इसलिये उदरकोप में भ्रमण करनेवाला रक्त बड़े वेग से वक्ष:स्थल की ओर वह जाता है और उदर की इंद्रियों में रक्त-संचार तेजी से होने लगता है। फुप्फुस-प्रदाह और वक्ष:स्थल के प्रदाह के रोगी के फुप्फुस में रक्तसंचार बड़ी गड़बड़ हालत में रहता है। पेडू की इंद्रियों में इसके हानिकारक परिणाम शीघ्र ही मालूम होने लगते हैं, यकृत, प्लीहा और अँतड़ियाँ में रक्त की अधिकता हो जाती है। फुप्फुस में रक्तसंचार की अव्यवस्थित दशा ही इस रक्ताधिक्य का कारण है।

दीर्घ प्रश्वास छोड़ते समय जब उदर में का भार घटता है तब वक्षःस्थल का भार बढ़ जाता है और निःश्वास से जो रुधिर बहकर वक्षःस्थल में आया हुआ होता है, वह बड़ी तेजी से बहकर उदरकोष में वापिस चला जाता है। इस प्रकार प्राणायाम से पेड़ू की इंद्रियों का रक्तसंचार और उनकी नाड़ियों की क्रिया सबल हो जाती है और इन इंद्रियों की कर्मण्यता बढ़ जाती है।

प्राणायाम से जो आमाशय और अँतड़ियों के शोथ का और पेड़ू की अन्य इंद्रियों के रोगों का शमन होता है उसका यह भी एक कारण है।

कुछ ग्रंथकार पहले ही घोषित कर चुके हैं कि प्राणायाम से उदरगत भार में जो परिवर्तन होता है उसका सारे शरीर के और विशेष कर उदर की इंद्रियों के रक्तसंचार पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। १९०८ खृष्टाब्द में श्री फुतकी ने उदरगत श्वासक्रिया के अच्छे परिणामों की व्याख्या की थी। उनकी इस श्वासक्रिया की विधि में इस तरह श्वास लेना पड़ता है जिससे उदर में का भार बढ़ जाय।

इसके अतिरिक्त प्राणायाम के द्वारा अधः महाशिरा के साथ साथ श्रोणिगा शिरा में भी रक्तप्रवाह का वेग बढ़ जाता है क्योंकि वह भी अधः महाशिरा में ही मिल जाती है। यह श्रोणिगा शिरा निम्न भागों, वस्ति, मलद्वार और जननें-द्रियों से आनेवाली शिराओं से बनी है, इसलिये इन इंद्रियों

में भी रक्तसंचार कर्मण्य हो जाता है। यही नहीं, मस्तिष्कगा बृहती और कक्षगा शिराओं में के रक्त का भी नियमन हो जाता है। पहली अंतरपार्श्विका पेशियां, अन्नप्रणाली और मेरुदंड से आनेवाली शिराओं के मेल से बनी है और दूसरी ऊर्ध्व भागों से आनेवाली शिराओं के मेल से। इसलिये इन भागों और जननेंद्रियों की भी खूब वृद्धि होती है और उन्हें रोगोत्पादक कीटाणुओं के रक्तसंचार की अव्यवस्था के कारण पैदा हुए रोगों के विरुद्ध प्रतिरोध-शक्ति प्राप्त हो जाती है।

यहाँ पर लसीका-प्रवाह पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। रक्त-प्रवाह के साथ-साथ यह भी हमेशा शरीर में चक्कर लगाया करता है। शरीर की पुष्टि में इसका भी भाग रहता है। अगर शरीर हृष्ट-पुष्ट हो तो छूत के रोग असर नहीं कर सकते। और कई रोग तो ऐसे हैं जो लसीका-प्रवाह की गड़बड़ी के कारण ही पैदा होते हैं।

सारे शरीर में चक्कर मारकर अंत में लसीका वक्षखात में प्रवेश करती है। यह वक्षखात ऊर्ध्व महाशिरा से मिला हुआ है। इस कारण जब प्राणायाम से ऊर्ध्व महाशिरा में रक्तप्रवाह की गति तीव्र होती है तो वक्षखात में लसीका-प्रवाह की गति भी तीव्र हो जाती है और सारे शरीर में लसीका-प्रवाह का नियमन हो जाता है। फिर, प्राणायाम से सारे शरीर में रक्त-प्रवाह की गति बढ़ती है और लसीका-प्रवाह रक्त-प्रवाह के साथ-साथ चलता है इसलिये लसीका-प्रवाह

की भी गति बढ़ जाती है। इस तरह लसीका-प्रवाह की अव्यवस्था के कारण जो रोग पैदा होते हैं वे प्राणायाम करने से नहीं होने पाते।

फुप्फुस के अप्राकृत प्रसार और प्राणायाम का क्या संबंध है, अब यह देखना चाहिए। यह रोग अक्सर देखने में आता है। यह कई कारणों से हो जाता है। पर बहुधा किसी दूसरे रोग के कारण होता है। पहले बिना किसी दूसरे रोग के हुए यह नहीं होता है और अगर होता भी है तो किसी विरली दशा में। अक्सर वायुप्रणाली के जीर्ण प्रदाह से फुप्फुस का अप्राकृतिक प्रसार होता है। वायुप्रणाली की झिल्ली के सूजने से कहने को तो असर जरा सा होता है पर इतने ही से वायुमंदिरों तक निःश्वास खींचना अत्यंत कठिन हो जाता है। ऐसा करने के लिये अप्रमित दीर्घ निःश्वास लेना पड़ता है। इससे वायुमंदिर में प्रचंड तनाव हो जाता है। और प्रश्वास से तो ऐसी दशा में और अधिक हानिकारक दबाव पड़ता है। इस तरह धीरे धीरे फुप्फुस की स्थितिस्थापक शक्ति घट जाती है।

वायुप्रणाली के जीर्ण प्रदाह से जो कठिन खाँसी होती है उसका भी ठीक ऐसा ही परिणाम होता है। कठोर और बहुत काल तक रहनेवाली कुकरखाँसी से भी फुप्फुस का अप्राकृतिक प्रसार हो जाता है। वायुप्रणाली के दमा से तो किसी समय फुप्फुस का स्थायी प्रसार हो जाता है।

यह भी हो सकता है कि विना किसी ऊपर लिखी क्षति के पहुँचे किसी और रोग के कारण छोटी उम्र में ही फेफड़ों की स्थितिस्थापकता नष्ट हो चुकी हो। फुप्फुस के स्थिति-स्थापक तत्त्व की पैत्रिक बलहीनता के कारण नवीन अथवा प्रौढ़ावस्था में उनका अप्राकृतिक प्रसार हो जाता है। स्थिति-स्थापक तत्त्व की बलहीनता का कारण यह होता है कि या तो स्थितिस्थापक तंतु संख्या में कम होते हैं अथवा काफी होते हुए भी उनमें स्थितिस्थापक गुणों की कमी होती है और फल-रूप में उनका पोषण नहीं होने पाता।

मुँह से बाजा बजानेवालों और काँच फूकनेवालों को इस रोग का हो जाना साधारण बात है। इस प्रकार के पेशे-वालों को शीघ्र शीघ्र दीर्घ श्वास लेने पड़ते हैं और साथ ही ज़ोर से प्रश्वास छोड़ने पड़ते हैं। श्लैष्मिक झिल्ली पर इसका वैसा ही असर पड़ता है जैसा भारी बोझ उठाने में बलातीत श्रम करने से हुआ करता है।

अगर फुप्फुस स्वस्थ और प्रमित दशा में हों तो उनका अप्राकृतिक प्रसार नहीं हो सकता। प्रमित दीर्घ श्वासोच्छ्वास से फेफड़ों की स्थिति-स्थापकता बढ़ाई जा सकती है। मुझे अब तक ऐसा कोई रोगी नहीं मिला जिसके फेफड़ों में नियम-पूर्वक प्राणायाम करने के बाद भी अप्राकृतिक प्रसार के लक्षण दिखाई दिए हों। मेरा विश्वास है कि नियमपूर्वक प्राणा-याम करने से इस रोग का अनागत प्रतिषेध हो जाता है और

उसके हो जाने पर किसी सीमा तक उसका निवारण भी हो जाता है।

वक्षःस्थल की इंद्रियों पर प्राणायाम के जो प्रभाव पड़ते हैं, उनकी पूरी पूरी व्याख्या तो फिर की जायगी परंतु यहाँ पर उनका उल्लेख मात्र कर देना उचित होगा।

फुप्फुस और हृदय वक्षःस्थल की बड़ी आवश्यक इंद्रियाँ हैं। इनका बड़ा घनिष्ठ अन्योऽन्य संबंध है। हृदय के दाहिने क्षेपक-कोष्ठ से शिरा का रक्त फुप्फुस में जाता है। इस रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड भरा रहता है। फुप्फुस में वह कार्बन डाइऑक्साइड को छोड़ देता है और ऑक्सिजन को ग्रहण करता है। और फिर बाएँ ग्राहक कोष्ठ के रास्ते बाएँ क्षेपक-कोष्ठ में आ जाता है। यहाँ से वह शरीर के समस्त तंतुओं में संचार करने लगता है। इसलिये हृदय और फुप्फुस में से यदि एक का व्यापार न्यून हुआ तो दूसरे का भी न्यून हो जाता है। अक्सर देखने में आता है कि फुप्फुस के रोग से हृदय का और हृदय के रोग से फुप्फुस का रोग पैदा हो जाता है। प्राणायाम से फेफड़े और हृदय एक साथ ही मजबूत हो जाते हैं।

अंत में मैं प्राणायाम और मस्तिष्क का संबंध बता देता हूँ। यह तो सभी जानते हैं कि मस्तिष्क हमारे शरीर की बड़ी से बड़ी आवश्यक और नाज़ुक इंद्रिय है। मस्तिष्क के रोगों से आदमी या तो पागल हो जाता है या मर जाता है।

मस्तिष्क के सभी रोग रक्तसंचार की गड़बड़ी से होते हैं। इसलिये रक्तसंचार को नियमशील रखना चाहिए। [प्राणायाम इसके लिये एक ही उपाय है।]

मस्तिष्क के भयंकर रोगों में से पक्षाघात भी एक है। जैसे क्षय से बहुत से युवकों की मृत्यु होती है वैसे ही पक्षाघात से बहुत से वृद्धों की मृत्यु होती है। यह रोग मस्तिष्क की किसी रक्त-नाली के टूट जाने से होता है। प्राणायाम करने से इसका प्रतिषेध किया जा सकता है।

शिरा का रक्त मस्तिष्क के तंतुओं में परिभ्रमण कर बाहरी हिस्से में बाहर निकलता है और ग्रीवा की शिरा के मार्ग से हृदय को लौट जाता है। दीर्घ निःश्वास में वक्षगत भार निगेटिव हो जाता है और फुप्फुस फैल जाते हैं। इस समय मस्तिष्क के तंतुओं में का बहुत सा रक्त वक्षःस्थल में चला आता है। प्रमित निःश्वास के समय इतना रक्त नहीं आ सकता। इससे मस्तिष्क में रक्त की कुछ कमी हो जाती है और रक्त-वाहिनी केशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं। पर दीर्घ प्रश्वास छोड़ने से वक्षगत भार उन्नत हो जाता है और मस्तिष्क के तंतुओं में इतना अधिक रक्त लौट आता है जितना प्रमित प्रश्वास के समय नहीं आ सकता। इससे वहाँ कुछ रक्त की अधिकता हो जाती है और केशिकाएँ फूल जाती हैं। यह रक्त की अधिकता बहुत थोड़े समय तक रहती है और मस्तिष्क में गया हुआ रक्त बड़ी तेज़ी से वक्षःस्थल में लौट आता है।

इस सबका फल यह होता है कि प्राणायाम करते समय मस्तिष्क में रक्त का प्रवाह प्रमित श्वासक्रिया की अपेक्षा अधिक तेजी से चलता रहता है। इससे मस्तिष्क की रक्तवाहिनी केशिकाओं में किसी मात्रा तक रक्त का थमाव रुक जाता है। ऐसा होने से रक्तवाहिनियों के टूट जाने का भय नहीं रहने पाता। क्योंकि यह रक्तसंचार के थम जाने से ही होता है। बार-बार सिकुड़ने और फैलने से रक्तवाहिनियों की दीवारें भी मजबूत हो जाती हैं। इससे उनके टूटने का भय और भी कम हो जाता है और मस्तिष्क में का सामान्य रक्त-संचार नियमशील हो जाता है। इस तरह मस्तिष्क पक्षाघात जैसे भीषण रोग से बच जाता है।

मैंने कई वृद्धों को प्राणायाम करने की सम्मति दी है और अब तक उनमें से किसी को पक्षाघात होते नहीं देखा है। यहाँ कुछ के हाल लिखे जाते हैं। १९०६ में मैंने दो पुरुषों और एक स्त्री को प्राणायाम करने की सम्मति दी थी। पक्षाघात की ओर उनकी पैत्रिक प्रवृत्ति थी। उनके माता पिताओं को ४८ से ६९ वर्ष की अवस्था के बीच पक्षाघात हो गया था। पर उन तीनों का स्वास्थ्य अच्छा है, उन्हें अब तक कुछ नहीं हुआ है। उस स्त्री की और पुरुषों में से एक की अवस्था इस समय (१९१९ में) ६० साल की है और दूसरे पुरुष की ७० साल की है।

हाँ, कहा तो यह भी जा सकता है कि अगर उन्होंने प्राणायाम न भी किया होता तो भी उन्हें यह रोग न होता।

पर यदि उन्हें आजीवन यह रोग न हुआ तो इस कथन में, कि प्राणायाम ने ही उन्हें इस रोग से बचाया है, किसी को आपत्ति न होनी चाहिए।

यही नहीं, सुबह शाम प्राणायाम करने से मन में ताजगी मालूम होती है और खूब भूख लगती है। दो महीने प्राणायाम करके फिर उसे छोड़ देखिए, बढ़ी हुई जठराग्नि मंद होने लगेगी और उदासी छा जायगी।

इस प्रकार प्राणायाम से सारा शरीर बलवान् होता है।

प्राणायाम से यक्ष्मा का प्रतिषेध

साधारणतः लोहार की भुजाएँ लंबी और बलिष्ठ और नर्तक की छोटी और दुर्बल होती हैं और चिट्ठीरसाँ की टाँगें मोटी और सशक्त और दरजी की पतली और कमजोर होती हैं। अगर बालकपन में दो भाइयों की गठन एक सी हो और तेरहवें वर्ष से एक लोहार और दूसरा नर्तक हो जाय तो पाँच ही छः वर्ष के बाद उनकी भुजाओं की गठन और मांसलता में दर्शनीय अंतर हो जायगा।

दाहिने हाथ से काम करनेवाले का दाहिना हाथ बाएँ हाथ से काम करनेवाले के दाहिने हाथ से मज़बूत होता है। कुछ वर्ष से जो शाम सुबह प्राणायाम करता आ रहा हो उसकी छाती की पेशी और अस्थियाँ उस मनुष्य की छाती की पेशी और अस्थियों से अधिक बलवान् और दृढ़ होंगी, जो प्राणायाम नहीं किया करता। दो मास तक चलिए नहीं तो देखिएगा कि आपकी टाँगें पतली होती जा रही हैं।

जिस प्रकार हाथ की अस्थियाँ और पेशियाँ हाथ के व्यायाम से बलवान् बनती हैं उसी प्रकार आंतरिक अंगों की वृद्धि भी उनके व्यायाम पर निर्भर है। स्वस्थ मनुष्य के आमाशय की पाचक क्रिया अस्वस्थ मनुष्य के आमाशय की पाचक क्रिया से बलवती होती है। जो मनुष्य बीमारी के कारण खाट पकड़े हो और दूध-शोरुए के सिवाय कुछ न खा

सकता हो उसकी पाचन शक्ति घट जाती है और उसके पेट का आकार भी सामान्य भोजन करने के साथ साथ व्यायाम करने-वाले के पेट के आकार से छोटा होता है।

इसी प्रकार फुप्फुस के जिन भागों का औरों की अपेक्षा अच्छा व्यायाम होता है वे उन औरों से अच्छी दशा में रहते हैं। फुप्फुस के मध्य और निम्न भाग इसी कारण ऊपरवाले भाग से अच्छे स्वस्थ होते हैं।

प्रमित दशाओं में फुप्फुस का बहुत कम व्यायाम होता है। साधारणतः प्राणायाम के समय फुप्फुस की सत्त्व शक्ति ३,००० से ३·५०० घन शतांश मीटर तक होती है किंतु प्रमित श्वासक्रिया से फुप्फुस में केवल ५०० घन शतांश मीटर वायु ही आती है। मध्यम प्राणायाम के समय वक्षगत भार ५९ मि० मि० पारद तक उन्नत हो जाता है जिसमें वक्षगत भार ऊपर लिखे परिमाण से ज्यादा हो या फुप्फुस में ऊपर लिखे परिमाण से अधिक वायु जाय ऐसा श्वास-व्यायाम हम शायद ही कभी करें। इसलिये फुप्फुस सामान्यतः विश्रांत दशा में रहते हैं। ऐसी दशा में शरीर के और अंगों के साथ साथ फुप्फुस की भी वृद्धि हो जाती है और अगर और अंगों की वृद्धि रुक गई तो फुप्फुस की भी वृद्धि रुक जाती है।

उधर अगर किन्हीं दूसरी बातों से फुप्फुस का प्राकृतिक व्यायाम रुक जाय तो उनकी हालत बुरी हो जाती है और कुछ समय के बाद उनका व्यापार कम हो जाता है। हाथ-पाँव

की स्थिति ऐसी है कि उनका स्वतंत्र रूप से व्यायाम हो सकता है और वे ऐसी दृढ़ त्वचा से ढके हुए हैं जिसके विरुद्ध हवा में उड़नेवाले भयंकर कीटाणु कुछ नहीं कर पाते।

अपने शरीर के आंतरिक अंगों का ही दृष्टांत लीजिए। वे भी फेफड़ों से अधिक सुरक्षित हैं। पोषण नलिका के मुख पर ही लार है। उसमें कीटाणु पनप नहीं सकते। आमाशय से एक तेज कीटाणु-विरोधी रस निकलता है जो हमेशा कीटाणुओं की उत्पत्ति को रोके रखता है। दिन भर में प्रायः तीन बार भोजन किया जाता है इससे केवल आमाशय को उत्तेजना ही नहीं मिलती है बल्कि उसका व्यायाम भी हो जाता है और वहाँ रक्त-संचार उसी प्रकार कर्मण्य हो जाता है जैसे प्राणायाम से फुप्फुस में होता है।

हृदय, प्लीहा, अग्न्याशय और वृक्क भी त्वचा, पेशियों और अस्थियों के द्वारा वायु से सुरक्षित हैं और उनके स्वाभाविक व्यापार में वैसी बाधा भी नहीं पड़ती जैसी फुप्फुस के व्यापार में पड़ती है। फुप्फुस कीटाणु-वाही वायु से सुरक्षित नहीं हैं, इसलिये कीटाणु उनमें प्रवेश कर जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके स्वाभाविक व्यापार में शरीर की स्थिति, चुस्त कपड़ों और मन की भिन्न भिन्न अवस्थाओं से बाधा पड़ती रहती है। ऐसी विपरीत दशाओं में कीटाणुओं और धूल से युक्त वायु आसानी से फेफड़ों में प्रविष्ट हो जाती है।

इन कारणों से फुप्फुस की प्रतिरोध शक्ति धीरे धीरे कम होती जाती है और यक्ष्मा की ओर उनकी प्रवृत्ति बढ़ती जाती

है। शरीर के और अंगों में यक्ष्मा इतनी अधिकता से नहीं होता जितनी अधिकता से फुप्फुस में होता है, इसके यही मुख्य कारण हैं।

श्वासक्रिया की गड़बड़ी के कारण फेफड़ों का क्षय की ओर झुकाव हो जाता है। इसलिये हमें छाती की बनावट पर बड़ा ध्यान देना चाहिए। श्वासक्रिया बहुत कुछ छाती की बनावट पर ही निर्भर है। अगर छाती की बनावट अच्छी और मजबूत है तो क्षय नहीं आक्रमण कर सकता, परंतु छाती के बेडौल, चपटी और कमज़ोर होने से बिना आक्रमण के भी यक्ष्मा हो जाता है। पुराने जमाने के लोग इस बात को जानते थे या नहीं, नहीं कहा जा सकता, पर छाती की वनावट की ओर वे बहुत ध्यान देते थे। अब तो हालत ही कुछ और है।

क्षय के रोगियों में से कम से कम ३५ सैकड़ा ऐसे होते हैं जिनकी छाती अच्छी तरह से बनी नहीं होती। उनकी छाती चपटी, सिकुड़ी हुई रहती है, अंसास्थियाँ बाहर निकली रहती हैं, वक्षःस्थल की पेशियाँ निर्बल होती हैं।

अब हमें यह देखना चाहिए कि टुबर्कल कीटाणुओं (यक्ष्मा के कृमियों) का हमला सबसे अधिक फेफड़ों के किन हिस्सों पर होता है। १८५६ में फ्रूँड ने सिद्ध किया था कि पहली पार्श्विका उपास्थि के अच्छी तरह पुष्ट न होने से उसका असमय ही विकास हो जाता है। फ्रूँड का सिद्धांत है कि इससे छाती की पुष्टि में अड़चन पड़ती है और साथ ही

फुप्फुसों के ऊपरी भागों की कर्मण्यता भी कम हो जाती है। इसी से, कुछ वर्ष हुए फेफड़ों के क्षय की चिकित्सा के लिये ऑपरेशन करके पहली पार्श्विका हटाई गई थी।

साथ ही शिखर का यक्ष्मा की ओर पैत्रिक झुकाव भी होता है। टर्बन की खोजों से यह सिद्धांत निकला है। उन्होंने २२ परिवारों में इस बात की जाँच की। इन सब में माता-पिताओं को किसी एक फेफड़े के शिखर का क्षय हुआ था। इन परिवारों के १९ बालकों को उसी फेफड़े के शिखर का क्षय हुआ जिस फेफड़े के शिखर के क्षय से उनके माता-पिता मरे थे। इससे उन्होंने यही परिणाम निकाला कि शिखरों की क्षय के विरुद्ध कम प्रतिरोध शक्ति ही नहीं, क्षय की तरफ उनका स्थानिक पैत्रिक झुकाव भी होता है। क्रेव्स की खोजों से भी यही परिणाम निकला है। उनकी जाँच में २८ क्षयी परिवारों में २१ बालकों को क्षय हुआ और वह भी उसी फेफड़े के शिखर में आरंभ हुआ जिसमें उनके माता-पिताओं को हुआ था।

जो कुछ भी हो, इसमें तो संदेह ही नहीं है कि शिखर पर फुप्फुस के और भागों की अपेक्षा क्षय का अधिक आक्रमण होता है। स्वयं मैंने इँगलैंड और जापान में क्षय के बहुत से रोगियों की जाँच की है। उनमें से मुझे अधिकतर रोगी ऐसे ही मिले जिनके रोग का आरंभ फुप्फुस के शिखर पर हुआ था। ऐसे रोगी विरले ही मिलते हैं, जिनके फेफड़ों के

बिचले या निचले भाग पर क्षय शुरू हुआ हो। सामान्य गणना के अनुसार क्षय के सौ में से अस्सी रोगियों में रोग फेफड़ों के शिखर पर ही आरंभ होता है। इसलिये फेफड़ों के शिखरों को क्षय के हमलों से बचाने के उपायों को ढूँढ़ना बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर इन अस्सी रोगियों के फुप्फुस-शिखर जिन्हें पहले शिखर पर का क्षय होता है, बलिष्ठ होते और यक्ष्मा के कीड़ों के हमलों से बचे रहते तो इतने लोगों को क्षय न होता। शिखर से ही क्षय के कीड़े फुप्फुस में प्रवेश करते हैं। इसलिये अगर इनकी क्षय से रक्षा की जा सके तो और भाग अपने आप इस रोग से बचे रहें।

इन बातों के अतिरिक्त शिखरों की स्वाभाविक स्थिति और बनावट ही कुछ ऐसी है कि प्रमित दशा में भी उनके क्षय के शिकार हो जाने का डर रहता है।

पहले, तो वे फुप्फुस के ऊपरी भाग हैं। उनकी स्थिति ऐसी है कि वहाँ काफी हवा नहीं पहुँच सकती, इसलिये धूल और हवा के साथ जो क्षय के कीड़े वहाँ घुस जाते हैं उन्हें बाहर निकालना कठिन हो जाता है।

दूसरे, वहाँ जो वायु-प्रणालियाँ गई हैं उनकी कोई नियमित अवस्थिति नहीं है और उनकी शाखाएँ बिल्कुल ही न्यून कोण बनाती हुई फूटती हैं। बिचले और निचले भागों से शिखरों की कर्मण्यता भी बहुत कम होती है। खाँसने से या छींकने से प्रश्वास का प्रबल प्रवाह चलता है। अगर किसी

भाँति विचले या निचले भागों में क्षय के कीटाणु पहुँच गये तो वे इस प्रवाह के साथ शिखरों में आ जाते हैं। शिखरों की कर्मण्यता के कम होने के कारण वे वहीं रुके रह जाते हैं। कीटाणुओं से युक्त प्रस्राव वगैरह भी वहीं जमा हो जाते हैं।

फिर, शिखर में रक्त और लसीका का प्रवाह और भागों की अपेक्षा धीमा रहता है। इससे भी कीटाणु वहीं निश्चल रह जाते हैं। वहाँ रक्तवाहिनियों की संख्या भी बहुत कम रहती है। इससे वहाँ अपेक्षाकृत रक्त की कमी रहा करती है जिससे क्षय की ओर झुकाव बढ़ता है।

फुप्फुस पर प्राणायाम के क्या आरोग्यप्रद प्रभाव पड़ते हैं, किस प्रकार उससे उनकी याक्ष्मिक प्रवृत्ति हटाई जा सकती है, यह बतलाने से पहले व्यवच्छेद-शास्त्र के अनुसार उनकी साधारण गठन बता देना आवश्यक प्रतीत होता है।

फुप्फुस असल में एक तरह की ग्रंथियाँ हैं जिनकी शकल दाख के गुच्छे से मेल खाती है। वे एक बंध कोष में बंद रहते हैं जिसकी बाहरी सतह अंतर्कला से ढकी रहती है। फुप्फुसों के अनेक छोटे बड़े अंश होते हैं जो आपस में सौत्रिक तंतु के द्वारा जुड़े होते हैं। प्रत्येक अंश में बहुत सी रक्त और लसीका वाहिनियाँ तथा केशिकाएँ और वातसूत्र रहते हैं। प्रत्येक अंश से एक वायु-प्रणालिका लगी होती है जिसका संबंध कई वायु-मंदिरों से रहता है। वस्तुतः वायुप्रणालियों के शाखा-प्रशाखाओं में फूटने से फुप्फुस बनते हैं। पहले इनकी

दो दो तीन तीन शाखा-प्रशाखाएँ फूटती हैं। जब इस तरह इन नलियों का व्यास १/५ से १/६ इंच तक रह जाता है तब दो
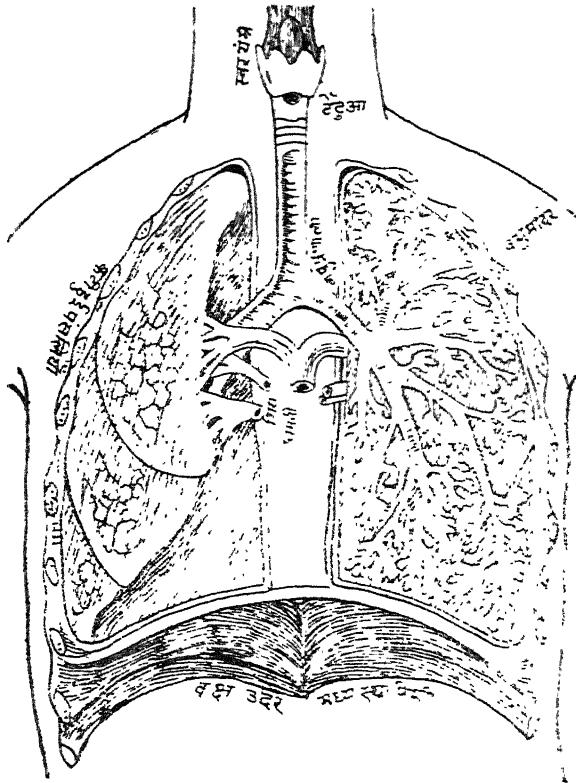
दो ही नहीं एक साथ कई शाखाएँ न्यूनकोण बनाती हुई निकलती हैं और इन नलियों को एकांतर लपेटती चली जाती

हैं। फिर समकोण बनाती हुई पहले के ही समान शाखा-प्रशाखाएँ फूटने लगती हैं। अंत में जब इनका व्यास १/६० से १/८० इंच तक रह जाता है, तब ये सूक्ष्म नलिकाएँ वायुमंदिरों में मिल जाती हैं। ये वायुमंदिर एक प्रकार की छोटी कोठरियाँ हैं जिनमें वायु भरी रहती है। गैसी विनिमय के मुख्य स्थान यही हैं। ये भी कई सूक्ष्म वायु कोष्ठों के मेल से बने होते हैं। यदि शहतूत को उसके ऊपर के दानों तथा डंठल समेत खोखला कल्पित करें तो वायुमंदिर की ठीक समानता उतर जाय। शहतूत की खोखली डंठल सूक्ष्म वायु-प्रणाली है, खोखला शहतूत वायुमंदिर और शहतूत के खोखले दाने वायुकोष्ठ। "अनुमान है कि दोनों फुप्फुसों में वायुमंदिरों की संख्या १६ से १८ करोड़ के लगभग होती है। यदि इन कोठरियों को खोलकर उनकी दीवारें पृथ्वी पर बिछा दी जा सकें (जो असंभव है) तो इनका फैलाव (क्षेत्रफल) १३० से १५० वर्ग गज होगा; यह समझना चाहिए कि ३६ फुप्फुसों के कोष्ठों की दीवारों का क्षेत्रफल १ एकड़ होता है।*"

यह फुप्फुसों की सामान्य व्यवच्छेदात्मक बनावट है। अब देखना चाहिए कि उन पर प्राणायाम का क्या आरोग्यप्रद प्रभाव पड़ता है और किस प्रकार उससे फुप्फुस के शिखर का क्षय की ओर झुकाव रोका जा सकता है।

---

* डा० त्रि० ना० वर्मा—हमारे शरीर की रचना, पहला भाग, पृष्ठ २२७-२२८।

प्राणायाम करने से सूक्ष्म वायु-प्रणालियाँ फैलती और सिकुड़ती हैं। इससे फुप्फुस के सब भागों की कर्मण्यता बढ़ जाती है। उचित व्यायाम और स्वच्छ वायु से शिखर की वृद्धि अच्छी होती है। इससे जो क्षय के कीड़े वहाँ घुस जाते हैं वे स्थानिक तंतुओं की स्वाभाविक प्रतिबंध शक्ति के द्वारा धीरे-धीरे मर जाते हैं और निःश्वास के साथ जो कीड़े आते हैं वे प्रश्वास के प्रबल प्रवाह के साथ बाहर फेंक दिए जाते हैं।

क्षय के कीड़ों की वृद्धि के साथ गैसीय विनिमय का घना संबंध है, इसलिये इस पर भी विचार करना चाहिए। रक्त और प्रश्वसित वायु के बीच गैस-विनिमय बराबर होता रहता है। रक्त में के कार्बन डाइ ऑक्साइड को वायु ले लेती है और उसमें के ऑक्सिजन को रक्त ले लेता है। परंतु प्रमित श्वास-क्रिया से फुप्फुस के शिखर तक ताजी हवा नहीं पहुँचती। वहाँ वही हवा पहुँचती है जो प्रश्वास से बाहर नहीं आ सकती है। इस अवशिष्ट वायु में कार्बन डाइ ऑक्साइड अधिक और ऑक्सिजन कम होता है। अगर वायु-मंदिरों और उनके निकटवर्ती रक्त में इन दोनों गैसों के तनाव के बीच अधिक अंतर हुआ तो विनिमय शीघ्रता से हो जाता है। पर इस अवशिष्ट वायु और शिखर के रक्त में इन गैसों के तनाव में कम अंतर होता है। इससे गैस-विनिमय भी बहुत धीमा होता है।

शरीर के सब भागों में घूमकर जो रक्त फुप्फुस में आता है अवशिष्ट वायु के समान उसमें भी कार्बन डाइ ऑक्साइड

अधिक और ऑक्सिजन कम होता है। इसके प्रतिकूल ताजी हवा में कार्बन डाइ ऑक्साइड कम और ऑक्सिजन अधिक होता है। फेफड़ों के बिचले और निचले भागों में ताजी हवा निःश्वास से बिल्कुल सीधे आया करती है, इससे वहाँ ही खासकर निःश्वसित वायु और रक्त के बीच गैस-विनिमय होता है। गैस-विनिमय के साथ साथ वहाँ के तंतुओं का स्वाभाविक व्यायाम भी और भागों की अपेक्षा अच्छा होता है। फल यह होता है कि इन भागों के तंतु अच्छे बलिष्ठ होते हैं और उनकी यक्ष्मा के कीड़ों के विरुद्ध प्रतिरोध शक्ति भी अपेक्षाकृत अधिक होती है। कोई विरला ही रोगी ऐसा मिलता है जिसके इन भागों में यक्ष्मा आरंभ हुआ हो। बिचले भागों के लिये यह बात विशेष रूप से लागू है क्योंकि वहाँ श्वास-व्यायाम और गैस-विनिमय सबसे अच्छा होता है। व्यवच्छेदात्मक खोजों से भी यही परिणाम निकलते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि फुप्फुस के बिचले भाग में निचले भाग से और निचले भाग में ऊपरवाले भाग अर्थात् शिखर से श्वास-व्यायाम और गैस-विनिमय अच्छा होता है। इसलिये बिचले भाग क्षय के कीड़ों के विरुद्ध सबसे अधिक और शिखर सबसे न्यून प्रतिरोध शक्ति रखते हैं। निचले भाग की प्रतिरोध शक्ति इन दोनों के बीचोंबीच होती है। प्रयोगात्मक और व्यवच्छेदात्मक अन्वेषणों से भी यही मालूम

होता है कि शिखर बहुधा और निचले भाग बहुत कम और बिचले भाग तो किसी विरले ही समय क्षय के शिकार होते हैं।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ गैस-विनिमय सक्रिय होता है वहाँ क्षय के कीटाणु वृद्धि नहीं पा सकते। कुछ वर्ष हुए श्री कितसतो ने भी कहा था कि क्षय के जो कीटाणु शिखर में घुस जाते हैं उनमें से कुछ प्राणायाम के द्वारा ताजी हवा का निःश्वास लेने से मर जाते हैं।

फेफड़ों के द्वारा साँस लेने का काम तो सदा होता ही रहता है पर शरीर के तंतुओं के सब सेल भी प्रत्यक्ष या प्रकारांतर से जुदा जुदा साँस लिया करते हैं। त्वचा और पोषणनली के कुछ थोड़े से सेल प्रत्यक्ष रूप से साँस लिया करते हैं क्योंकि उनका वायु से साक्षात् समागम होता है। परंतु उनमें से बहुत से रक्त के कर्तृत्व से साँस लिया करते हैं। उन तंतुओं के सेल जिनमें कार्बन डाइ ऑक्साइड अधिक और ऑक्सिजन कम होता है रक्त से ऑक्सिजन लेकर कार्बन डाइ ऑक्साइड को उसमें छोड़ देते हैं। परंतु फुप्फुस के तंतु के सेलों का निःश्वास की वायु के साथ साक्षात् समागम होता है इसलिये वे वायु के साथ स्वच्छंदता से गैस-विनिमय कर सकते हैं। वायु-प्रणालियों और वायुमंदिरों के सेलों के विषय में भी यही बात सत्य है। शरीर के सब तंतुओं में परिभ्रमण करने-वाले रक्त का गैस-विनिमय इन्हीं सेलों के द्वारा होता रहता है। शिराओं के द्वारा कार्बन डाइ ऑक्साइड से लदा हुआ रक्त हृदय

में आता है और वहाँ से फुप्फुसों में। इस रक्त में ऑक्सिजन बहुत कम रहता है। फुप्फुसों में यह रक्त धमनी के रक्त में बदल जाता है जिसमें ऑक्सिजन बहुत ज़्यादे और कार्बन डाइ ऑक्साइड कम रहता है।

फेफड़े हमेशा मैले रक्त को शुद्ध रक्त में बदलने के काम पर लगे रहते हैं। अगर श्वासावरोध से या किसी और कारण से फेफड़ों का यह काम बंद हो जाय तो आदमी कार्बन डाइ ऑक्साइड के विष से बहुत जल्द मर जाय। श्वासावरोध के रोगी के रुधिर में स्वस्थ आदमी के रुधिर से अधिक कार्बन डाइ ऑक्साइड और कम ऑक्सिजन रहता है। गैस-विनिमय फुप्फुसों और रक्त दोनों में बहुत जल्द जल्द होता है। स्वस्थ मनुष्य के शरीर में फुप्फुसों को छोड़कर सत्रह सेकिंड में रक्त वहाँ लौट आता है।

व्यायाम से विश्राम की अपेक्षा शरीर अधिक ऑक्सिजन ग्रहण करता है और अधिक कार्बन डाइ ऑक्साइड फेंकता है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। तंतुओं के किसी भाग में या शरीर के किसी भी अंग में इस बात का प्रयोग कर दिखाया जा सकता है। उदाहरण के लिये प्राणायाम करते समय फुप्फुस के सेलों में और अंगों के सेलों की अपेक्षा ऑक्सिजन का परिमाण बहुत घट जाता है और कार्बन डाइ ऑक्साइड का बहुत बढ़ जाता है। कारण यह है कि उससे फुप्फुस के सेलों का औरों से अधिक व्यायाम होता है। इसी से शिखर के तंतुओं में

प्राणायाम के समय ऑक्सिजन का परिमाण घटता और कार्बन डाइ ऑक्साइड का बढ़ता है। अर्थात् इन सेलों में ऑक्सिजन का तनाव नीचा और कार्बन डाइ ऑक्साइड का ऊँचा होता है। इसके प्रतिकूल निःश्वास के द्वारा जो ताजी हवा शिखर में आती है उसमें ऑक्सिजन का तनाव उच्च और कार्बन डाइ ऑक्साइड का तनाव निम्न रहता है। इस कारण प्राणायाम के समय गैस-विनिमय प्रमित अवस्था की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से होता है।

इस तरह वायुप्रणालियों और वायुमंदिरों की सतह पर के सेल वायु से ऑक्सिजन को खींचकर उसकी कमी को पूरा करते हैं और कार्बन डाइ ऑक्साइड को हवा के हवाले कर देते हैं। उधर दूसरी ओर वे रक्त से कार्बन डाइ ऑक्साइड लेते हैं और उसे ऑक्सिजन देते हैं। इन सेलों की स्वतः श्वासक्रिया बलवती और स्वयमेव ऑक्सिजनीकरण शक्ति बहुत तेज है। इससे, अनुमान है कि, इन सेलों की सतह पर के यक्ष्मा के कीड़े मर जाते हैं। यह अनुमान सर्वथा संभव है।

तेरह वर्ष की अवस्था में मैंने प्राणायाम करना आरंभ किया था। उस समय मेरा विचार था कि जैसे हवा में आग जलती है वैसे ही ऑक्सिजन भी फेफड़ों के तंतुओं में जलता है। इससे गरमी पैदा होती है जिससे फुप्फुसों में के क्षय के कीड़े मर जाते हैं। यह विचार बिल्कुल ठीक तो नहीं है पर आजकल के चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार बिल्कुल ग़लत भी नहीं है।

पहले कहा जा चुका है कि शिखर पर अक्सर क्षय के कीड़ों का आक्रमण होता है। व्यवच्छेदात्मक खोजों से पता चला है कि वायुप्रणालियाँ स्थितिस्थापक सूत्रों, डोरीहीन पेशियों और नियोजक तंतुओं से बनी हैं। वे श्वासक्रियात्मक वायु-प्रणालिकाओं और वायुमंदिरों तक पहुँची होती हैं। उनकी स्थितिस्थापक शक्ति बहुत तेज है और इच्छानुसार आसानी से फैलाई और सिकोड़ी जा सकती है। गहरा निःश्वास लेने से वायुप्रणालिकाएँ और वायु-मंदिर बहुत फैल जाते हैं और गहरा प्रश्वास छोड़ने से ये सिकुड़कर बहुत छोटे हो जाते हैं। इस फैलने और सिकुड़ने के साथ साथ हवा का तेज प्रवाह चलता है। इनकी सिकुड़ने की शक्ति और प्रश्वास के प्रवाह से वायुमंदिरों और वायुप्रणालिकाओं की दीवारों पर के क्षय के कीड़े प्रस्राव के साथ साथ बाहर फेंक दिए जाते हैं।

इसके अतिरिक्त वायुप्रणालियों की दीवारों पर के रोएँदार काष्ठतंतु भी इन कीड़ों को निकालने में लगे रहते हैं। रोग-जनक कृमियों के विरुद्ध यह फुप्फुसों की एक नैसर्गिक प्रति-बंध शक्ति है। प्रश्वास की हवा के प्रवाह से यह शक्ति बढ़ाई जा सकती है। यदि वायुप्रणालिकाओं और वायु-मंदिरों के तंतु स्वस्थ हों और उनकी प्रतिबंध शक्ति तेज हो तो क्षय के कीड़े पनप नहीं सकते। उन्हें बहुत जल्द नियोजक तंतु घेर लेते हैं। इससे उन्हें ख़ुराक नहीं मिलने पाती और

वे धीरे धीरे मर जाते हैं। क्षय के रोगियों के फेफड़े को चीरने से वहाँ बहुत से स्थल दिखाई देते हैं जो चूने में बदले होते हैं। ये क्षय के कीड़ों की क़ब्रें समझनी चाहिएँ। गहरे निःश्वास से जब वायुप्रणालिकाएँ फैलती हैं तो उनके न्यून कोण अधिक कोण हो जाते हैं और न्यून कोण के कोनों में जमा हुए बलगम के सहित क्षय के कृमि ऊपर लिखी क्रिया से आसानी से हटा दिए जाते हैं।

टुबर्कल कीटाणुओं के संवर्धन के लिये संवृद्धि माध्यम को संवर्द्धन कोष में बड़ी सावधानी से रखना होता है। मेरा अनुभव है कि संवृद्धि माध्यमों को हिलाने से इन कृमियों की वृद्धि रुक जाती है। ख़ासकर पैदा होने के समय हिलाने का इन पर बड़ा असर होता है। परंतु जब किसी हद तक इनकी वृद्धि हो जाती है तो हिलाने से वैसा असर नहीं पड़ता। तब ख़ुद इनमें प्रतिरोध शक्ति हो जाती है और ये कई विघ्न बाधाओं को पार कर लेते हैं। फुप्फुस या शरीर के अन्य अंगों में भी क्षय के कीड़ों की वृद्धि इन्हीं नियमों पर होती है। नेजेली ने पता लगाया है कि जवान आदमी के शरीर के किसी न किसी तंतु में ऐसे स्थल अवश्य रहते हैं जो चूने में बदल गए होते हैं। ये स्थल टुबर्कल कृमियों की क़ब्रें होती हैं। इससे सिद्ध होता है कि ये क्षय के कीड़े, जिनकी ये क़ब्रें हैं, पैदा होने की आरंभिक अवस्था में मर गए थे। परंतु किसी सीमा तक जब उनकी वृद्धि हो जाती है,

तब उनको नष्ट करना कठिन हो जाता है। क्षय के रोगियों में यह बात देखी जाती है और इसी कारण क्षय असाध्य रोग भी समझा जाता है। फुप्फुसों के शिखर क्षय के कीड़ों के संवर्धन के लिये प्राकृतिक संवृद्धि-माध्यम हैं। ऊपर के उदाहरणों से यह समझने में कोई कठिनता नहीं रह जाती कि प्राणायाम के द्वारा शिखरों का व्यायाम करने से दुर्बकल कीटाणुओं की वृद्धि में किसी हद तक बाधा पड़ती है।

हम यह भी कह चुके हैं कि फेफड़े के शिखर में रक्त और लसीका का प्रवाह ही मंद नहीं होता, रक्त और लसीका वाहिनियाँ भी और अंगों की अपेक्षा कम होती हैं। यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है। प्राणायाम में इन यान्त्रिक प्रवृत्तियों को हटाने की शक्ति विद्यमान है।

लसीका और रक्त के मंद प्रवाह से केवल शिखर का ही यक्ष्मा की ओर झुकाव नहीं होता, उसके कारण शरीर के और भागों पर भी क्षय और अन्य रोगों के कीटाणुओं का हमला होता है। मेरा ही दृष्टांत लीजिए। पाठक जानते हैं कि मैं सात वर्ष तक तीव्र अस्थिशोथ रोग से पीड़ित रहा। तीव्र अस्थिशोथ हड्डी का रोग है। यह रोग स्ट्रेप्टोकोकस और स्टैफिलोकोकस नाम के कीटाणुओं से होता है। इस रोग का आरंभ बहुत कुछ उसी तरह होता है जिस तरह फेफड़े के शिखर का क्षय आरंभ होता है। एपिफिसिस हड्डी का एक किनारा होता है जो उपास्थियों से जुड़ा रहता है। इसमें से होकर

जो रक्तवाहिनियाँ गई हैं वे अस्थि के गात्र की रक्तवाहिनियों से चौड़ी होती हैं। इन मोटी रक्तवाहिनियों में रक्त का प्रवाह छोटी रक्तप्रवाहिनियों से मंद होता है। यह बात बिलकुल स्वाभाविक है। इसलिये अस्थि के रक्त में जो रोग के कीटाणु घुस जाते हैं वे अस्थि के गात्र में नहीं रुकने पाते क्योंकि वहाँ रक्त का प्रवाह तीव्र होता है। पर एपिफिसिस की रक्तनालियों में रक्त का प्रवाह मंद होने के कारण वे उनकी दीवारों में ठहर जाते हैं। बच्चों की हड्डी का शोथ इसी कारण एपिफिसिस में शुरू होता है। इसी तरह फुप्फुस के रक्त में जो टुवर्कल कीटाणु पहुँच जाते हैं वे रक्त-प्रवाह के तेज होने के कारण निचले और विचले भागों में नहीं रुकने पाते परंतु शिखर में रक्त का प्रवाह धीमा होता है इस कारण वे वहाँ की रक्तवाहिनियों की दीवारों में ठहर जाते हैं। धीरे धीरे वहाँ उनकी वृद्धि होती रहती है और निदान शिखर का क्षय हो जाता है।

गहरी साँस लेने से, वक्षगत भार में वहुत वड़ा परिवर्तन होता है, साथ ही फुप्फुस के आकार में भी परिवर्तन होता है। दीर्घ निःश्वास से वक्षखात में का भार निगेटिव होता है और फुप्फुस फैल जाते हैं। इससे वक्षःस्थल में रक्त भर आता है और रक्तवाहिनियाँ उससे भरकर फूल जाती हैं। दीर्घ प्रश्वास से वक्षगत भार ऊँचा हो जाता है और फुप्फुस सिकुड़ जाते हैं। दीर्घ निःश्वास से जो रक्त वक्षःस्थल में आया था वह

दीर्घ प्रश्वास से वहाँ से बाहर चला जाता है। इस क्रिया से शिखर में का मंद रक्त-प्रवाह तेज हो जाता है। ये सब बातें शरीरशास्त्र की खोजों से निस्संदेह सिद्ध हो चुकी हैं।

नदी में जहाँ बहाव धीमा होता है वहाँ का जल गँदला होता है और वहाँ किनारों पर और तह में कई प्रकार की अशुद्धताएँ जमा हो जाती हैं। लेकिन जहाँ जल की धारा तेज होती है वहाँ का जल स्वच्छ होता है और वहाँ ऐसी गंदगियाँ नहीं होतीं। इसी तरह जब शिखर में रक्त और लसीका का प्रवाह तेज हो जाता है तो क्षय के कीटाणुओं का वहाँ की रक्त और लसीका वाहिनियों की दीवारों पर बैठना बंद हो जाता है।

शिखर का क्षय की ओर झुकाव होता ही है, तिस पर वहाँ रक्तवाहिनियाँ कम होती हैं जिससे रक्त की कमी रहा करती है और तंतुओं की वृद्धि नहीं हो पाती। यदि शिखर में रक्त की अधिकता हो तो टुबर्कल कीटाणुओं के विरुद्ध उसकी प्रतिरोध शक्ति बढ़ जाय। रक्ताधिक्य से शिखर ही क्या शरीर के प्रत्येक भाग में तेज प्रतिरोध शक्ति आ जाती है। और इससे जीवाणुओं की वृद्धि रुक जाती है। कुछ उदाहरण लीजिए।

क्षय के कीटाणुओं से जो संधिवात और अन्य रोग पैदा होते हैं उनके तथा रोगजनक जीवाणुओं से जो त्वचा, पेशियों और अस्थियों में कई प्रकार की सूजन हो जाती है उसके लिये बायर ने एक नया उपचार निकाला है। उसमें रुग्ण भाग

की ओर बहुत सा रक्त आता है और उसी से रोग का निराकरण हो जाता है।

बालकों को तीव्र अस्थ्यावरक शोथ और अस्थिशोथ बहुत होता है, परंतु हड्डी के टूट जाने पर ये रोग बहुत कम देखने में आते हैं। क्योंकि अस्थि के टूटने से रक्त की अधिकता होती है जिससे कोई जीवाणु वहाँ नहीं जी सकता। टुबर्कल कीटाणुओं से पैदा हुए आरंभिक उदरकला शोथ की चिकित्सा के लिये या तो उदरछेदन किया जाता है या टेपिंग करके पेड़ू का पानी निकाला जाता है। इससे रोगी को अक्सर आराम आ जाता है। इस रोग में उदरकला और अँतड़ियों की दीवारों की रक्तवाहिनियों की क्रिया को पानी रोक रखता है। इस पानी को निकाल देने से इन भागों में रक्त-संचार कर्मण्य हो जाता है और सिकुड़ी हुई रक्तवाहिनियाँ फूल उठती हैं। इससे रुग्ण भाग में बहुत रक्त जमा हो जाता है जिससे सब टुबर्कल कीटाणु मर जाते हैं।

बहुत वर्षों से आयोडीन का टिंचर बड़ा तेज जीवाणु-विनाशी समझा जाता है। चीर-फाड़ के कामों में इसका बहुत व्यवहार किया जाता है। इस औषध में अवश्य जीवाणु-विनाशक शक्ति है परंतु इसके व्यवहार से त्वचा में जो रक्त की अधिकता होती है उसमें भी जीवाणुविनाशक शक्ति है।

त्वचा, पेशी, अस्थि और शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के शोथ के उपचार के लिये ठंडी या गरम पट्टियाँ बाँधी जाती हैं।

यह उपचार सर्वसाधारण में बहुत प्रचलित है। इस उपचार से प्रत्यक्ष हो या प्रकारांतर से रक्त की अधिकता होती है। इसी से आरोग्यदायक प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। सूजे हुए भाग पर गरम पट्टी लगाने से त्वचा के तले रक्त की अधिकता होती है जो धीरे धीरे बहुत गहराई तक पहुँच जाती है। मगर फेफड़ों की बीमारी के उपचार के लिये जब "प्रीसनीज की पट्टी" या कोई और ठंडी पट्टी बाँधी जाती है तो पहले तो ऊपरी भाग में शिराओं और धमनी के रक्त की वाहिनियाँ सिकुड़ती हैं और फिर और नीचे जाकर रक्त की अधिकता होती है। शरीर के किसी भी भाग में जब रक्ताधिक्य होता है तो वहाँ रक्त के विवर्ण कण बहुत हो जाते हैं। इन विवर्ण कणों में बड़ी जीवाणुविनाशक शक्ति होती है। इससे रोग के जीवाणु मर जाते हैं और उस स्थान के तंतु का पुनर्निर्माण बड़ी तेज़ी से होने लगता है और सेलों की वृद्धि पाने की शक्ति बढ़ जाती है। इस तरह शोथ का कारण दूर हो जाता है और रोग आराम हो जाता है। क्षय के रोगियों के ज्वर में "प्रीसनीज की पट्टी" बाँधने से ज्वर का बल कम होकर आराम मिलता है। इसका कारण भी रक्ताधिक्य ही है।

ऊपर लिखे उदाहरणों के अलावा और रोगों के उपचार में भी यह बात देखी जा सकती है। जब बाईं ओर का कपाट अपना काम खूबी के साथ नहीं करता तो फुफ्फुस से जो रक्त शुद्ध होकर बाएँ क्षेपक-कोष्ठ को आता है उसमें से बहुत कुछ

फुप्फुस को वापिस चला जाता है, इससे वहाँ हमेशा धमनीय रक्त की अधिकता रहती है। फल यह होता है कि वहाँ ट्युबर्कल कीटाणु जीवित नहीं रहने पाते। जिन लोगों को बाएँ कपाट की अक्षमता का रोग होता है उन्हें क्षय होते हुए बहुत कम देखा जाता है। परंतु जब फुप्फुसीय कपाट अक्षम हो जाता है तो क्षय की ओर झुकाव हो जाता है। कारण यह है कि जो रक्त हृदय से फुप्फुस को आता रहता है उसमें से फुप्फुसीय कपाट के अक्षम होने से बहुत कुछ हृदय को ही लौट जाता है जिससे फेफड़ों में हमेशा रक्त की कमी बनी रहती है। इसी से इस रोग के रोगी क्षय के अधिक शिकार होते हैं।

इन उदाहरणों के संबंध में ब्रेह्मर का प्रयोग उल्लेख करने के योग्य है। उनका सिद्धांत है कि जिसका हृदय दोनों फेफड़ों से छोटा होता है उसका क्षय की ओर झुकाव होता है। इस सिद्धांत की व्यावहारिक जाँच करने के लिये उन्होंने क्षय के रोगियों के लिये एक अस्पताल खोला। उनका उन्होंने ऐसा उपचार किया जिससे हृदय बलिष्ठ बने। इसी तरह उन्होंने कई क्षय-रोगियों को आराम कर दिया। हृदय के निर्बल होने से फेफड़ों में और खासकर शिखरों में रक्त-संचार अच्छा नहीं रहता जिससे शिखर का क्षय की ओर का झुकाव बहुत बढ़ जाता है।

शरीर के जिस भाग में टुबर्कल कीटाणु पैदा होते हैं वहीं अपने लिये नया घर बना लेते हैं। यह घर दानेदार तंतु का

होता है। इसे टुबर्कल कहते हैं। कभी कभी तो ये दूर दूर फैले मिलते हैं लेकिन अक्सर बहुत से एक साथ ही रहते हैं। आरंभिक दशा में ये इतने छोटे होते हैं कि अणुवीक्षण यंत्र से भी मुश्किल से दीखते हैं, परंतु धीरे धीरे बढ़ते जाते हैं। ये टुबर्कल एपिथीलियल, लसिकीय और राक्षसाकार सेलों से बने होते हैं और चारों ओर नियोजक तंतुओं से घिरे रहते हैं। इनमें रक्तवाहिनियाँ नहीं होतीं यद्यपि और दानेदार तंतुओं में होती हैं। टुबर्कल और अन्य दानेदार तंतुओं में यही भेद होता है। इससे उन्हें पहचानने में आसानी होती है। जहाँ रक्त-संचार अच्छा रहता है वहाँ क्षय के कीटाणु पैदा होकर अपने लिये टुबर्कल नहीं बना सकते। प्राणायाम से रक्तसंचार के कर्मण्य होने के साथ साथ फेफड़ों में की रक्तवाहिनियाँ रक्त की अधिकता से फूल उठती हैं और टुबर्कल नहीं बनने पाते।

अब क्षय के कीटाणुओं की वृद्धि और तंतुओं के रक्ताधिक्य के बीच के संबंध पर विचार करना चाहिए। रक्त में खास खास दो पदार्थ होते हैं, एक तो लाल कण और दूसरे श्वेत कण। लाल कणों का काम गैस-विनिमय करना है और श्वेत कणों का रोगजनक जीवाणुओं को मारना। जहाँ कहीं श्वेत कणों को रोगजनक जीवाणु मिलते हैं वहीं इकट्ठे होकर वे उन्हें पकड़कर खा जाते हैं। यह व्यापार फैगोसिटोसिस कहलाता है। फैगोसिटोसिस के द्वारा क्षय के कीटाणु भी मारे जाते

हैं। शरीर में चाहे जो कीटाणु या विजातीय द्रव्य घुस गए हों, सब पर श्वेत-कणों का यह व्यापार होता है। इस व्यापार को पहले पहल मेच्निकॉफ़ ने देखा था। उनकी बतलाई रीति से हम स्वयं इस जीवाणु-भक्षण-क्रिया का अणुवीक्षण यंत्र के द्वारा दर्शन कर सकते हैं।

इस सिद्धांत के विरुद्ध एक आमिक सिद्धांत निकला है जिसके प्रवर्तक फौडर प्रभृति चिकित्सा-शास्त्री हैं। उनका कहना है कि रक्त में एक पदार्थ है जिसे सीरम या रक्त-रस कहते हैं। इसमें बड़ी जीवाणुविनाशक शक्ति है। यही शरीर में घुसे हुए जीवाणुओं को मारता है। श्वेत या विवर्ण कण तो केवल मरे हुए जीवाणुओं को जज़्ब भर कर लेते हैं। परंतु मेच्निकॉफ़ आदि चिकित्साशास्त्री पहले ही असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर चुके हैं कि विवर्ण कण मरे जीते सब जीवाणुओं को पकड़कर चट कर जाते हैं। स्वयं मैंने इस संबंध में कई प्रयोग किए हैं। भिन्न भिन्न जीवाणुओं को मारने में विवर्ण कणों को एक सा ही समय नहीं लगता। यह जीवाणुओं के प्रकार और प्रकृति पर निर्भर है। टाइफाइड के और हैज़ा के कीड़ों को मारने में कम समय लगता है और क्षय के और अस्थिशोथ के कीड़ों को मारने में अधिक।

अगर विवर्ण कणों को रक्त में से निकालकर लवण घोल में डाल दें तो उनका जीवाणु-भक्षण-व्यापार उतना कर्मण्य नहीं रह जाता। परंतु अगर उन्हें लवण घोल के बदले स्वस्थ,

रोगहीन रक्तरस में डालें तो यह व्यापार फिर कर्मण्य हो जाता है। इस प्रकार विवर्ण कणों और रक्तरस का एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध है। दोनों में तेज जीवाणुविनाशक शक्ति होती है। रक्त में जो स्वाभाविक जीवाणुविनाशक शक्ति है, जिसके कारण हम कितने ही रोगों से बचते हैं, वह सब इन्हीं दो के प्रभाव से।

विवर्ण कण और रक्तरस के अलावा रक्त में रक्त-पत्र, यूरिया और कुछ लवण और अलकली आदि जीवाणुविरोधी पदार्थ इतनी मात्रा में होते हैं कि उसमें जीवाणुओं की वृद्धि कठिन हो जाती है। इसी वजह से कहते हैं कि अगर शिखर का रक्त-संचार बढ़ जाय और वहाँ अकसर रक्त की अधिकता हो जाया करे तो उसकी जीवाणु-विरोधी शक्ति बढ़ जाय।

दीर्घ निःश्वास लेने से वक्षःस्थल में निगेटिव भार ही नहीं बढ़ता, फुप्फुस भी फैलते हैं और उनमें की रक्तवाहिनियाँ फूल उठती हैं। इन्हें भरने के लिये बहुत सा रक्त फुप्फुसों में चला आता है। साधारणतया तो शिखर में रक्त की कमी रहा करती है परंतु ऐसी हालत में वहाँ रक्त की अधिकता हो जाती है। शरीर-शास्त्र-संबंधी खोजों से पता लगा है कि निःश्वास लेते समय जो रक्त फुप्फुसीय शिरा द्वारा बाएँ क्षेपक कोष्ठ में आता है वह उस रक्त से अधिक होता है जो प्रश्वास के समय आता है। साथ ही निःश्वास के समय प्रश्वास के समय से रक्तभार भी ऊँचा रहता है। इससे सिद्ध है कि निःश्वास के

समय फुप्फुस में प्रश्वास के समय की अपेक्षा अधिक रक्त रहता है। और दीर्घ निःश्वास के समय तो फुप्फुस रक्ताधिक्य की दशा में रहते हैं। और अंगों में तो शिरागत रक्त की अधिकता हुआ करती है परंतु फुप्फुसों में धमनीय रक्त का रक्ताधिक्य होता है। शिरा के रक्त में जीवाणुविरोधी शक्ति कम होती है और धमनी के रक्त में अधिक। धमनी का रक्त क्षय के कीटाणुओं को मारने में भी अधिक समर्थ होता है।

इन बातों से यह परिणाम निकलता है कि रक्त में क्षय के कीटाणुओं की वृद्धि नहीं हो सकती फिर भी क्षय के रोगियों के रक्त में ये कीटाणु मिलते ही हैं। हमारे सामने प्रश्न यह आता है कि क्या रक्त में क्षय के कीटाणु जिंदा रह सकते हैं या सिर्फ अस्थायी रूप से प्रकट होते हैं। अगर वे रक्त में लगातार रहें तो मानना पड़ेगा कि वे उसमें वृद्धि पा सकते हैं। और यदि यह बात है तो कोई भी पदार्थ हमें उनसे नहीं बचा सकता। परंतु अगर वे रक्त में अस्थायी रूप से प्रकट होते हैं तो यह सिद्ध होता है कि वे उसमें वृद्धि नहीं पा सकते और तभी रक्त में पाए जाते हैं जब कि वे रुग्ण भाग से छूटकर फैलते हैं। अलग अलग लोगों की खोजों से अलग अलग परिणाम निकले हैं। एक का कहना है कि क्षय के रोगियों के रक्त में तो वे बहुतायत से पाए ही जाते हैं परंतु स्वस्थ मनुष्य के रक्त में भी मिलते हैं। दूसरे को तीस सैकड़े क्षय-रोगियों के रक्त में क्षय के कीटाणु मिले हैं। तीसरे का सिद्धांत है कि

स्वस्थ मनुष्य के रक्त में क्षय के कीटाणु नहीं पाए जाते और क्षय-रोगियों में भी सौ में से पाच के रक्त में मिले हैं।

रक्त में और थूक में क्षय के कीटाणुओं की संख्या एक सी नहीं रहती। जिस रोगी का रोग बढ़ गया हो उसके थूक में उनकी संख्या अधिक रहती है और जिसका रोग अभी आरंभिक दशा में हो उसके थूक में कम; परंतु रक्त में ऐसा कोई भेद नहीं होता। यह भी निश्चित है कि बढ़े हुए रोग के रोगी के थूक में क्षय के कीटाणु बहुत मिलते हैं, परंतु उसी रोगी के रक्त में वे कभी कभी पाए जाते हैं। जिस रोगी को अँतड़ियों का क्षय होता है उसकी द्वार-शिरा के रक्त में और भागों के रक्त से क्षय के कीटाणु अधिक होते हैं। और अँतड़ियों के क्षय के रोगी की द्वार-शिरा के रक्त में फुप्फुस के क्षय के रोगी की द्वार-शिरा के रक्त से अधिक क्षय के कीटाणु होते हैं। अर्थात् जिस भाग में यह रोग रहता है उस भाग के रक्त में क्षय के कीटाणु अधिक होते हैं और जिसमें यह रोग नहीं होता उस भाग के रक्त में कम। इससे यही परिणाम निकलता है कि रक्त में क्षय के कीटाणु बहुत देर तक जीवित नहीं रह सकते। इस क्षेत्र के बहुत से शोध-कर्ता इस बात में सहमत हैं कि क्षय-रोगी के रक्त में क्षय के कीटाणु हमेशा नहीं पाए जाते।

यह जानने के लिये कि रक्त में क्षय के कीटाणु किस हिसाब से रहते हैं मैंने कई क्षय-पीड़ित जानवरों के रक्त की जाँच की। जाँच अभी तक खतम नहीं हो पाई है और

जितने जानवरों की जाँच हो गई है उनकी संख्या इतनी नहीं है कि इस प्रश्न का पूरी तौर से फैसला हो जाय। इसलिये नीचे जो परिणाम दिए जाते हैं उनके लिये मैं पूर्णता का दावा नहीं करता।

मार्मट एक प्रकार के पहाड़ी चूहे होते हैं। मैंने १५ दिसंबर १३ से १० फर्बरी १४ तक १३ क्षय-पीड़ित मार्मटों की जाँच की। मैंने अक्षकीया शिरा से ४ घन सेंटीमिटर रक्त निकाला और उसमें से २ घन सेंटीमिटर में ऐंटिफैर्मिन डालकर अणु-वीक्षण यंत्र से उसकी जाँच की। बाकी २ घन सेंटीमिटर को मैंने इंजेक्शन के द्वारा नीरोग मार्मट के उदरखात में डाल दिया। इस जाँच के लिये वाष्पशोधित जल की आवश्यकता होती है जो २४ घंटे से अधिक का वासी न हो। इसलिये मुझे हर रोज जल का वाष्प-शोधन करने की आवश्यकता हुई; और मैंने उस जल का व्यवहार नहीं किया जिसका वाष्प-शोधन किए बारह घंटे से अधिक हो गए हों।

इस जाँच के फल आगे दी गई सारिणी में अंकित हैं। उस सारिणी से पता चलेगा कि तेरहों केसों में परिणाम नकारात्मक रहे हैं। केस नं० १० और १२ के सिवा और सब केसों की जाँच मैंने टीका लगाने के साठ दिन बाद की और नं० १३ की सात महीने से अधिक के बाद। केस नं० ११ के सिवा और सब में कीटाणु-कण **पाशव प्रकार** के थे। केस नं० १३ **मानव प्रकार** की अपेक्षा **पाशव प्रकार** के अधिक सदृश थे।

केस संख्या	पशुसंख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
१	८६४	१४ अक्टुबर १९१३	१५ दिसंबर १९१३	**पाशव प्रकार**	वायुप्रणालिगत ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर; दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ नाशदाना के बराबर; फुप्फुसों में ट्युबर्कलों की १३ से अधिक गाँठें; यकृत और प्लीहा में बहुत बढ़ा हुआ क्षय।	—	—	१०३४
२	१०८६	१४ अक्टुबर १९१३	१५ दिसंबर १९१३	**पाशव प्रकार**	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ नाशदाना के बराबर; वायुप्रणालिगत ग्रंथियाँ सेम के बीज के	—	—	११९९

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
					बराबर; यकृत और प्लीहा का बहुत बढ़ा हुआ क्षय, फेफड़ों की सतह पर पंद्रह से अधिक गाँठें।			
३	१०८७	१४ अक्टुबर १९१३	१७ दिसंबर १९१३	पाशव प्रकार	दोनों वंक्षण ग्रंथियों के बराबर यकृत और प्लीहा पर बहुत सी भूरी गाँठें और मृततंतु, फेफड़ों पर भी बीस गाँठें, ग्रीवा की ६ ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	—	—	—

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
४	६६५	१४ अक्टुबर १६१३	१७ दिसंबर १६१३	पाशव प्रकार	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ दखनी सुपारी के बराबर; यकृत और प्लीहा पर टुबर्कलों की अगणित गाँठें, फेफड़ों पर बाजरे के बराबर कई गाँठें।	—	—	—
५	७६६	१४ अक्टुबर १६१३	२२ दिसंबर १६१३	पाशव प्रकार	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ दखनी सुपारी के बराबर और विषैले पदार्थ से युक्त; वायुप्रणालिगत ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर; यकृत और प्लीहा बहुत बढ़े	—	—	१२२३

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
					हुए और उन पर बहुत सी गाँठें; फेफड़ों की सतह पर भी कई गाँठें।			
९	६३२	१४ अक्टुबर १९१३	२२ दिसंबर १९१३	पाशव प्रकार	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ दखनी सुपारी के बराबर; यकृत और प्लीहा का बढ़ा हुआ क्षय; ग्रीवा की सात ग्रंथियाँ मटर के बराबर, फेफड़ों पर भी बहुत सी गाँठें।	—	—	१२१३

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
७	७८१	१४ अक्टुबर १९१३	१० जनवरी १९१४	**पाशव प्रकार**	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ दखनी सुपारी के बराबर; यकृत और प्लीहा पर कई गाँठें; फेफड़ों पर भी गाँठें; उदरकला की ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	——	—	१२१३
८	१२००	६ नवंबर १९१३	१५ जनवरी १९१४	**पाशव प्रकार**	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ नाशदाना के बराबर; उदरकला की ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर; वायुप्रणालिगत ग्रंथियाँ भी सेम के बीज के बराबर;	——	—	११२७

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
९	११५४	६ नवंबर १९१३	१५ जनवरी १९१४	**पाशव प्रकार**	फेफड़ों पर भी ट्युबर्कलों की बहुत सी गाँठें; यकृत और प्लीहा बहुत ज्यादे बढ़े हुए और उन पर अगणित गाँठें। दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ दखनी सुपारी के बराबर; प्लीहा बहुत बढ़ा हुआ और उस पर बहुत सी गाँठें; और बातें पशु सं० १२०० के समान।	—	—	९९४

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
१०	१२९९	१५ दिसंबर १९१३	२ फर्बरी १९१४	पाशव प्रकार	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ नाशदाना के बराबर; प्लीहा कुछ बढ़ा हुआ और उस पर थोड़ी सी गाँठें; वायु-प्रणालिगत ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर; फेफड़ों पर थोड़ी सी गाँठें; यकृत पर कोई टुबर्कल न था।	—	—	—
११	७७३	१४ नवंबर १९१३	८ फर्बरी १९१४	मानव प्रकार	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ नाशदाना के बराबर; यकृत पर कोई टुबर्कल न था; प्लीहा बढ़ा	—		—

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
					हुआ और उस पर कई भूरी गाँठें; वायु प्रणालि-गत ग्रंथियाँ मटर के बराबर; उदर कला की ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।			
१२	१३१४	२४ जनवरी १९१४	१० फर्बरी १९१४	**पाशव प्रकार**	दाहिनी वंक्षण ग्रंथियाँ मटर के बराबर, उन पर विषैला पदार्थ निकलने लगा था. यकृत, प्लीहा और फेफड़े पहले जैसे।	—	—	—

केस संख्या	पशु संख्या	टीका का दिन	जाँच का दिन	कीटाणु प्रकार	काट का पर्यवेक्षण	अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षाफल	पशु-परीक्षा-फल	टीका लगाए गए पशु की संख्या
१३	७२८	२६ जून १९१३	१० फर्वरी १९१४	**मानव प्रकार**	दोनों वंक्षण ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर; वायु प्रणालिगत ग्रंथियाँ भी सेम के बीज के बराबर; प्लीहा दसगुणा बढ़ा हुआ और उस पर अगणित गाँठें; यकृत पर एक भी टुबर्कल नहीं था; दोनों फेफड़ों के बाहर भीतर दोनों ओर अगणित गाँठें।	—	—	१३३७

ऊपर लिखे तेरहों केसों में एक भी रोगी मार्मट के रक्त में क्षय के कीटाणु नहीं पाए गए। और यद्यपि जैसा कह आए हैं जाँचे गए पशुओं की संख्या बहुत नहीं थी, फिर भी इस जाँच के आधार पर कह सकते हैं कि क्षय-पीड़ित पशुओं के रक्त में क्षय के कीटाणु हमेशा नहीं रहते। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि क्षय के मनुष्य-रोगियों के रक्त में भी ये कीटाणु हमेशा नहीं रहते।

शरीर के और ख़ासकर रक्त के सेलों की प्रवृत्ति है कि वे जीवाणुनाशक पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। जीवाणुओं के रक्त में प्रवेश करते ही ये पदार्थ उनके नाश के लिये उद्योग में लग जाते हैं। इसके अलावा रक्त में ही एक और पदार्थ रहता है जो जीवाणुओं के रक्त में प्रवेश करने से पहले ही उनमें से कुछ को मार डालता है। पहले को उत्पादित मुक्ति और दूसरे को स्वाभाविक मुक्ति कहते हैं। शिखर में प्राणायाम के द्वारा रक्ताधिक्य होकर जो तेज़ जीवाणु-विनाशक शक्ति उत्पन्न होती है वह इन्हीं दो मोक्षों के कारण।

अब विचार करना चाहिए कि फेफड़ों के बिचले और निचले भागों में क्षय कैसे होता है। पास के भागों से सटकर ही उनमें क्षय होता है, उन्हीं में उसका आरंभ किसी विरली ही दशा में होता है। लेकिन किन्हीं कारणों से जब उनकी स्वाभाविक क्रिया और रक्त संचार में बहुत गड़-

बड़ी पड़ जाती है तो इनकी नैसर्गिक प्रतिरोध शक्ति जाती रहती है। इससे क्षय के कीटाणु उनमें जगह कर लेते हैं। ऐसी हालत में इन्हीं भागों से भी क्षय आरंभ हो जाता है। उदाहरण के लिए सावरक फुप्फुसप्रदाह निचले भाग के क्षय का ही दूसरा नाम है। यह कई कारणों से हो जाता है। क्षय के कीड़ों के कारण जब उदरकला का शोथ हो जाता है तो वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी के मार्ग से क्षय के कीटाणु फेफड़े के निचले भागों में घुस जाते हैं। वे याक्ष्मिक फुप्फुसावरक शोथ में भी लसीका या रक्त-वाहिनियों के द्वारा निचले भाग के तंतु में प्रवेश कर जाते हैं। या ऐसा भी हो सकता है कि कीटाणु पहले निचले भाग में पहुँचें, और वहाँ से फुप्फुसावरक में जाकर किसी हद तक वृद्धि पाकर फिर निचले भाग में लौट आवें और वहाँ क्षय पैदा कर दें। आगे चलकर मालूम होगा कि याक्ष्मिक फुप्फुसावरक शोथ साधारणतया छाती के निचले और पार्श्व भागों में ही शुरू होता है। यह रोग दो प्रकार का होता है। एक तो तरल और दूसरा शुष्क। तरल फुप्फुसावरक शोथ में फुप्फुसावरक की दोनों झिल्लियों के बीच शोथजात प्रस्राव जमा हो जाता है। इससे स्वाभाविक श्वासगति और फुप्फुसों के रक्त-संचार में गड़बड़ी हो जाती है। फुप्फुसावरक के आवृत्त शोथ में यह बात खासकर होती है। शोथजात प्रस्राव के दूर हो जाने पर भी ये उपद्रव दूर नहीं होते। क्योंकि प्रस्राव के दूर हो जाने पर भी

आवरक की झिल्लियों के सूत्र आपस में चिपके ही रहते हैं। इससे फेफड़ों के व्यापार में पहले ही की तरह बाधा पड़ती रहती है।

शुष्क फुप्फुसावरक-शोथ में तरल पदार्थ नहीं होता; अगर होता भी है तो बहुत थोड़ा। लेकिन इससे श्वासगति में बहुत ही अधिक व्यतिक्रम पड़ता है। शोथ के लक्षणों के दूर हो जाने पर भी यह व्यतिक्रम नहीं जाता। कारण तरल-शोथ के समान ही झिल्लियों के सूत्रों का मिल जाना है। फेफड़े के जिस भाग में फुप्फुसावरक की कलाओं का सौत्रिक मिलन होता है या शोथ आदि उपद्रव रहते हैं, वहाँ के तंतुओं की अच्छी वृद्धि नहीं हो पाती। इससे उस भाग की प्रतिरोध शक्ति घट जाती है और धीरे धीरे क्षय की ओर झुकाव बढ़ता जाता है। फुप्फुसावरक शोथ के बाद क्षय का होना बहुत साधारण बात है। कुछ चिकित्सकों का मत है कि फुप्फुसावरक शोथ हमेशा क्षय के कीटाणुओं से ही होता है। यह तो सिद्ध हो चुका है कि फुप्फुसावरक शोथ के तीस रोगियों में से अट्ठाईस को तीस वर्ष के भीतर क्षय हुआ। क्षय के कीटाणुओं से ही फुप्फुसावरक का शोथ नहीं होता, उसके और भी कई कारण होते हैं; लेकिन इतनी बात ज़रूर है कि इस रोग से क्षय की ओर झुकाव हो जाता है। इस रोग के रोगमुक्त रोगियों के लिये श्वास-व्यायाम कुछ वर्षों से बहुत आवश्यक उपचार

माना जा रहा है। उनके लिये प्राणायाम करने का एक विशेष यंत्र बना है।

फुप्फुसावरक की बनावट संक्षेप से यह है। उसकी दो परतें या झिल्लियाँ होती हैं। एक परत फेफड़े से जुड़ी होती है और दूसरी वक्षःस्थल की दीवार की भीतरी सतह से। पहले को फुप्फुसीय फुप्फुसावरक और दूसरे को भित्तिगत फुप्फुसावरक कहते हैं। इन दोनों परतों के बीच हवा नहीं होती, थोड़ा सा तरल पदार्थ होता है। प्रमित श्वासक्रिया में इन दोनों परतों का मेल नहीं होता। उनके बीच हमेशा कुछ न कुछ फासला रहता है। ख़ासकर नीचे जाकर यह दूरी बढ़ जाती है। कभी कभी यह चार इंच के लगभग होती है। भित्तिगत फुप्फुसावरक पार्श्विका की दीवार, वक्ष के भीतरी खात और वक्ष उदर मध्यस्था पेशी से जुड़ी होती है।

प्रमित श्वास क्रिया से उस भाग का, जहाँ यह दूरी रहती है, बहुत ही कम श्वास-व्यायाम होता है और उससे यह दूरी घटती बढ़ती भी बहुत नहीं है। इसलिये उस भाग की अच्छी वृद्धि नहीं होती। इसी कारण फुप्फुसावरक शोथ अक्सर वहीं होता है। पर प्राणायाम से उस भाग का भी अच्छा व्यायाम हो जाता है। दीर्घ प्रश्वास से फुप्फुसावरक के वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी से और पार्श्विका की दीवार से जुड़े भाग मिल जाते हैं। इससे एक खोखला कोटर सा बन

जाता है। दीर्घ निःश्वास से फूलकर फेफड़े का निचला भाग जो फुप्फुसीय फुप्फुसावरक से ढका रहता है इस कोटर में चला आता है। इस व्यायाम से फुप्फुसावरक की दोनों सतहों पर की नाड़ियाँ उत्तेजित होती हैं जिससे उनका व्यापार तेज़ी से होने लगता है और दोनों परतें ऐसी मज़बूत हो जाती हैं कि क्षय के सरने का डर ही नहीं रहता।

फुप्फुसीय फुप्फुसावरण फुप्फुस से बिलकुल जुड़ा ही सा रहता है, और फेफड़े के अंदरी भाग के नियोजक तंतुओं की रक्त और लसीका वाहिनियाँ उसकी रक्त और लसीका वाहिनियों से संबद्ध हैं। इससे उसमें जो क्षय के कीटाणु घुस जाते हैं वे रक्त और लसीका के प्रवाह के साथ फेफड़े के तंतु में आ जाते हैं। इसी तरह फेफड़े से भी कीटाणु फुप्फुसीय फुप्फुसावरण में चले जाते हैं। एक के कमज़ोर होने से दूसरा भी कमज़ोर और एक के बलवान् होने से दूसरा भी बलवान् हो जाता है।

संक्षेप में, प्राणायाम से फेफड़ों के शिखर और निचले भाग और सारा फुप्फुसावरक बलवान् बनता है, और उन्हें क्षय के कीटाणुओं के विरुद्ध बड़ी प्रतिरोध शक्ति मिलती है। नीचे लिखे इक्वेशन से यह स्पष्ट हो जायगा कि प्राणायाम और प्रमित श्वास क्रिया में क्या भेद है—

शिखर = क

निचला भाग = ख

फुप्फुसावरक = ग

प्राणायाम = प्रतिरोध शक्ति (क + ख + ग)

प्रमित श्वास क्रिया = क्षय की ओर झुकाव (क + ख + ग)

प्राणायाम से सारा शरीर बलवान् होता है। इससे शरीर केवल यान्त्रिक रोगों के आक्रमण से ही नहीं बचता बल्कि और जीवाणु भी उस पर सफल आक्रमण नहीं कर सकते।

यक्ष्मा के प्रतिषेध के लिये पशुओं पर प्राणायाम के प्रयोग

पिछले अध्यायों में यक्ष्मा पर प्राणायाम के प्रतिषेधात्मक प्रभावों का सैद्धांतिक वर्णन और रोगियों पर उनके प्रयोगात्मक परिणाम दिए जा चुके हैं। पशुओं पर प्रयोग करके इन प्रभावों को सिद्ध करना भी उतना ही मूल्यवान् है। किंतु पशुओं से प्राणायाम कराना बड़ा कठिन है। यह तीन तरीकों से कराया जा सकता है। एक तो हाथों के उपयोग से, दूसरे एक यंत्र के उपयोग से जिस पर हवा भरने का एक पंप होता है और तीसरे प्रधमन (भार) में परिवर्तन करने के एक यंत्र से। मैंने पहले और तीसरे तरीके से पशुओं को प्राणायाम कराया। परंतु पहला तरीका मुझे सबसे अच्छा जँचा जिसे मैंने इस तरह किया। मार्मेट के सिर पर पीछे से बाएँ हाथ का सहारा दो। दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उँगली को छाती की बाईं ओर के निचले भाग पर और अँगूठे को दाहिनी ओर के निचले भाग पर रखकर छाती की भीत को धीरे से दबाते हुए हर एक पार्श्व के मध्य तक ले जाओ। ऐसा करने से दीर्घ प्रश्वास छूटता है। अब वक्ष-उदरमध्यस्था पेशी धीरे धीरे नीचे को आने लगेगी, इसके साथ ही उँगलियों को भी बिना दबाए हुए बहुत धीरे धीरे

नीचे की ओर ले आओ। दीर्घ निःश्वास लाने के लिये ऐसा किया जाता है। तब पशु के मुँह और उसकी नाक से साँस आने की एक छोटी सी आवाज होगी। ऐसी अप्राकृतिक रीतियों से दीर्घ निःश्वास लाना कठिन होता है। दीर्घ प्रश्वास के बाद वक्षःस्थल और फेफड़ों की जो स्वाभाविक क्रिया होती है उसी से वह उपस्थित किया जाता है।

हम लोग तो अपनी इच्छा शक्ति को प्रयोग में लाकर प्राणायाम करते हैं परंतु पशुओं से निष्क्रिय रूप से ही प्राणायाम कराया जा सकता है। इसलिये मनुष्यों और पशुओं पर प्राणायाम का भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ेगा। फिर भी पशुओं पर प्राणायाम के प्रभाव दृष्टिगत हो सकते हैं। क्योंकि इन अप्राकृतिक रीतियों से भी फुप्फुसों की क्रियाशक्ति बढ़ती है, रक्त-संचार तीव्र होता है और वक्षःस्थल और उदर के भार में परिवर्तन हो जाता है।

यक्ष्मा पर प्राणायाम की प्रतिषेध शक्ति देखने के लिये पशुओं से बनावटी प्राणायाम कराने से पहले उन्हें क्षय के कीटाणुओं से संक्रांत कर देना चाहिए। इसके दो उपाय हो सकते हैं। एक रक्त और लसीका-प्रवाहों के द्वारा संक्रमण करने का और दूसरा श्वास के द्वारा। दूसरा उपाय स्वाभाविक संक्रमण का है। श्वास और भोजन के ही द्वारा कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश करने से लोगों को क्षय हुआ करता है परंतु यह उपाय प्रयोग के योग्य नहीं है। इस-

लिये मैंने पहले उपाय का ही अनुसरण किया। यह भी दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो ऐसे घोल का, जिसमें क्षय के जीवित कीटाणु हों, शिरागत या उपचर्मगत इंजेक्शन करने से और दूसरा क्षयमाण-तंतु की उपचर्मगत टीका लगाने से। स्वाभाविक संक्रमण से बहुत कम कीटाणु पहले-पहल फुप्फुस पर आक्रमण करते हैं, पर क्षय के जीवित कीटाणुमय घोल के इंजेक्शन से फेफड़े के तंतु बहुत शीघ्र इन कीटाणुओं से भर जाते हैं और उन्हें चलनी चलनी कर देते हैं। क्षयमाण तंतु की उपचर्मगत टीका लगाना स्वाभाविक संक्रमण के अधिक निकट है क्योंकि उससे उतने अधिक कीड़े उत्पन्न नहीं होते जितने जीवित कीटाणुमय घोल का इंजेक्शन करने से होते हैं। इसलिये मैंने क्षयमाण तंतु की उपचर्मगत टीका लगाना ही ठीक समझा।

इन प्रयोगों के परिणाम रूप में इतनी ही आशा की जा सकती है कि जिस पशु से प्राणायाम कराया गया है उसके फेफड़ों में क्षय की क्रिया उस पशु के फेफड़ों में की क्षय-क्रिया से कम उन्नत हो जिससे प्राणायाम नहीं कराया गया, तथा प्राणायामवाले पशु के फेफड़ों में उसी की और इंद्रियों की अपेक्षा क्षय-व्यापार कम हो।

बंदर, चूहे, मार्मट आदि कई प्रकार के पशुओं पर यह प्रयोग किया जा सकता है। मैंने मार्मट को ही इसके लिये छाँटा। उसका वजन आध सेर के लगभग होता है।

१४ अक्तुबर १९१३ को बारह मार्मेटों के उदर भाग में एक मार्मेट की क्षयमाण तिल्ली के टुकड़ों की टीका लगाई गई। कीटाणु-कण पाशव प्रकार के थे। ये मार्मेटों के लिये बहुत भयंकर होते हैं पर मनुष्यों के लिये उतने भयंकर नहीं होते जितने मानव प्रकार के कण होते हैं। इन बारह मार्मेटों में से छः पर प्राणायाम का प्रयोग किया गया। प्रतिदिन दो बार पाँच पाँच मिनट तक उनसे प्राणायाम कराया जाता था। इन पाँच मिनटों के अंदर वे २०० से २५० तक दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेते थे। मार्मेट, सामान्यतः, एक मिनट में ८० से १०० बार तक साँस लेता है। जब वातावरण का ताप-परिणाम ३०° फार्नेहाइट या उससे ऊपर होता था तब प्राणायाम बाहर कराया जाता था और जब इससे नीचे होता था तब मकान के अंदर। शेष छः मार्मेट तुलना के लिये बिना किसी उपचार के वैसे ही छोड़ दिए गए थे। ये दोनों प्रकार के मार्मेट एक बाहरी मकान में रक्खे गए थे जहाँ वायु और प्रकाश खूब आता था और सबको एक सा ही भोजन दिया जाता था।

जब किसी प्रकार का एक पशु मरता था तो दूसरे प्रकार का भी एक पशु मार दिया जाता था और तब उन दोनों के फुप्फुसों में क्षय-व्यापार की तुलना की जाती थी। इस तुलना का परिणाम नीचे दिया जाता है। ये प्रयोग १४ अक्तुबर १९१३ को शुरू हुए थे और सत्तर दिन के बाद २३ दिसंबर १९१३ को खतम हुए।

टोली १ मार्मट संख्या १०७१

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	१०	$\frac{3}{4}$
२१ ,,	जिस भाग पर टीका लगाया गया था वह और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ आसानी से मालूम हो सकती थीं।	१०	
२८ ,,	टीका लगा भाग सूजा हुआ और सेम के बीज के बराबर।	६	३$\frac{3}{4}$
४ नवंबर	बाईं वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	६	१$\frac{1}{4}$
१२ नवंबर	टीका लगा भाग नाशदाना के बराबर और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के आकार की।	६	$\frac{1}{2}$
१६ नवंबर	टीका लगाने के ३६ दिन बाद मारा गया।	६	१$\frac{1}{4}$

चीरफाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर थीं और उनमें विषैले पदार्थ पैदा हो गए थे। प्लीहा प्रमित से तिगुनी बड़ी थी और उस पर कई टुबर्कल थे। फेफड़े प्रमित अवस्था में

थे; उन पर भीतर बाहर कहीं भी ट्युबर्कल न थे और अणुवीक्षण यंत्र द्वारा जाँच करने पर भी क्षय के कीटाणु नहीं पाए गए।

टोली १ मार्मट सं० १२२४

तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोला
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	६	०
२१ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ छूकर आसानी से मालूम हो सकती थीं।	८	२½
२८ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	८	१¼
४ नवंबर	टीका लगा भाग छलनी के समान और सेम के बीज के आकार का।	८	२⅔
१२ ,,	टीका लगा भाग नाशदाने के बराबर और दोनों वंक्षणों की ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	८	२½
१९ ,,	टीका लगाने के ३६ दिन बाद मरा।		

चीरफाड़—दोनों वंक्षणों की ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर थीं और उन पर विषैला पदार्थ पैदा हो गया था; प्लीहा सामान्य से पँचगुनी बड़ी और उस पर कई याक्ष्मिक गाँठें। यकृत प्रमित दशा में, १४ टुबर्कल फुप्फुसों की सतह पर और कुछ काट पर। उदर की इंद्रियों में रक्तरसमय सौत्रिक मिलन और उदरकोष में बहुत सा शोथजात प्रस्राव।

मृत्यु का कारण—याक्ष्मिक-उदरकला-शोथ।

टोली २ मार्मट सं० १२१४

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	८	३
२१ ,,	टीका लगा भाग कुछ कड़ा।	८	
२८ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	७	३$\frac{1}{3}$
४ नवंबर	टीका लगा भाग नाशदाने के बराबर, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	७	३$\frac{1}{8}$
१२ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	७	२$\frac{1}{2}$

टोली २ मार्मट सं० १२१४
प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन
		छटाँक तोला
१९ नवंबर	टीका लगा भाग कड़ा और दक्षिणी सुपारी के बराबर।	७ १½
२५ ,,	टीका लगा भाग पहले से अधिक सूजा हुआ, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर।	७ २⅝
२७ ,,	टीका लगाने के ४४ दिन बाद मारा गया।	

चीरफाड़—टीका लगा भाग कड़ा और नियोजक तंतु फलित, कुछ पका हुआ। दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर और उन पर विषैला पदार्थ पैदा हो गया था। प्लीहा और यकृत बहुत बड़े और उन पर बहुत से टुबर्कल। वायुप्रणाली की दो ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर और उन पर विषैला पदार्थ निकलने लग गया था।

बाएँ फेफड़े की सतह पर कोई टुबर्कल नहीं। काट पर थोड़े से टुबर्कल, दाहिने फेफड़े की सतह पर बाजरे के बराबर ग्यारह टुबर्कल।

टोली २ मार्मट सं० ८६७

तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	१०	१/८
२१ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ छूकर मालूम की जा सकती थीं।	९	३ १/४
२८ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	९	३ १/२
४ नवंबर	टीका लगे भाग पर नाशदाने के आकार का पीव जमा हुआ।	९	१/८
१२ ,,	टीका लगे भाग पर एक घाव, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	८	३
१९ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ पहले से अधिक बढ़ी हुई।	८	२ ३/४
२५ ,,	घाव के चारों ओर का कड़ापन कम हो गया था, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	८	३ ३/४
२९ ,,	टीका लगाने के ४४ दिन बाद मारा गया।	९	१/८

चीरफाड़—टीका लगा भाग पकने लगा था। दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर और उन पर पककर

विषैला पदार्थ निकलने लगा था। प्लीहा और यकृत में यक्ष्मा बढ़ गया था। फुप्फुसों की सतह पर तीस से अधिक टुबर्कल और उनके भीतर कई मृत गाँठें।

टोली ३ मार्मट सं० १०८६

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	६	$\frac{१}{८}$
२१ ,,	टीका लगा भाग मटर के बराबर।	८	$\frac{५}{८}$
२८ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	८	
४ नवंबर	टीका लगा भाग सेम के बीज के बराबर।	७	१
१२ ,,	टीका लगा भाग कठोर और नाशदाने के बराबर, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	७	१ $\frac{१}{१०}$
१९ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	७	२ $\frac{५}{८}$
		७	३ $\frac{१}{४}$
२५ ,,	टीका लगा भाग पहले से कुछ छोटा, उदर का ऊपरी भाग सूजा हुआ।	७	३ $\frac{३}{८}$
४ दिसंबर	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	७	३ $\frac{१}{२}$
१३ ,,	टीका लगाने के बासठ दिन बाद मारा गया।	७	३ $\frac{५}{८}$

चीरफाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर, प्लीहा और यकृत बहुत अधिक बढ़े हुए, और उन पर बहुत से टुबर्कल और कई मृत गाँठें। ग्रीवा की पाँच ग्रंथियाँ मटर के बराबर और कक्ष-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर। वायु-प्रणालिगत ग्रंथियाँ भी सेम के बीज के बराबर। दोनों फुप्फुसों की सतह पर बाजरे से लेकर चावल के बराबर बड़े उन्नीस टुबर्कल।

टोली ३ मार्सेट संख्या ८६४

तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	९	५/८
२१ ,,	टीका लगा भाग कुछ सूजा हुआ।	८	१ १/८
२८ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	८	१ १/४
४ नवंबर	टीका लगे भाग पर नाशदाने के बराबर पीव जमा हुआ, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	७	३ ५/८
१९ ,,	प्रायः पहले के ही समान।	८	१ १/४

टोली ३ मार्मट संख्या ८६४
तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
२५ नवंबर	दाहिनी वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर और बाईं नाशदाना के बराबर।	८	२½
४ ,,	बाईं कक्ष-ग्रंथियाँ मटर के बराबर, उदर का ऊपरी भाग फूला हुआ, यकृत बढ़ा हुआ।	८	२⅝
१३ ,,	टीका लगे भाग पर नाशदाने के बराबर एक घाव जिससे विषैला पीव निकल रहा था।	८	२¾
१५ ,,	टीका लगाने के बासठ दिन बाद मारा गया।	८	२½

चीरफाड़—टीका लगे भाग पर एक घाव, बाईं ओर की कक्ष-ग्रंथियाँ मटर के बराबर और उस पर दानेदार तंतु, प्लीहा पँचगुनी बड़ी और उस पर बहुत से टुबर्कल और कई मृत गाँठें, यकृत बढ़ा हुआ और उस पर कई टुबर्कल, फुप्फुसों पर कई टुबर्कल, खासकर निचले भाग पर—कुछ चावल के बराबर और कुछ बाजरे के।

टोली ४ मार्मट सं० १०८७

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	९	१ १/३
२१ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	८	३ १/५
२८ ,,	टीका लगा भाग नाशदाने के बराबर।	८	१ १/४
४ नवंबर	टीका लगा भाग नाशदाने के बराबर, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	८	२ ३/४
१९ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	८	२ ५/८
२५ ,,	टीका लगा भाग आधा इंच चौड़ा।	८	२ ५/८
४ दिसंबर	दाहिनी कक्ष-ग्रंथियाँ मटर के बराबर, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर।	८	१ १/३
१४ ,,	दोनों कक्ष-ग्रंथियाँ मटर के बराबर उदर का ऊपरी भाग बहुत फूला हुआ।	८	२ ३/४
१८ ,,	टीका लगाने के पैंसठ दिन बाद मारा गया।	८	१ १/३

चीरफाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्खिणी सुपारी के बराबर और पीव और टौक्सिन विष के सहित, प्लीहा और यकृत में तुलना के मार्मट के प्लीहा और यकृत की अपेक्षा अधिक बढ़ा हुआ, क्षय वायु प्रणालिगत ग्रंथि सेम के बीज के बराबर, उस पर विषैला पदार्थ निकलने लग गया था। फेफड़ों की सतह पर बाजरे के बराबर चौबीस ट्युबर्कल और थोड़े से काट पर।

टोली ४ मार्मट सं० ९६५
तुलना के लिये

तारीख		वजन
		छटाँक तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	१० २½
२१ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ कुछ बढ़ी हुईं।	९ ३⅚
२८ ,,	पहले ही के समान।	१० ¼
४ नवंबर	टीका लगे भाग पर नाशदाने के बराबर पीव जमा हुआ, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	९ ३⅔
१२ ,,	टीका लगे भाग से अब तक पीव निकल रहा था।	९ १½

टोली ४ मार्मट सं० ९६५

तुलना के लिये

तारीख		वजन
		छटाँक तोले
१९ नवंबर	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	९ १ १/३
४ दिसंबर	उदर का ऊपरी भाग फूला हुआ, दाहिनी कक्ष-ग्रंथि मटर के बराबर।	९ ४ ५/८
१३ ,,	दोनों कक्ष-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	९ २ १/२
१८ ,,	टीका लगाने के पैंसठ दिन बाद मारा गया।	९ ५/१६

चीर फाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर और विषैले पीव के सहित, प्लीहा दसगुनी बड़ी और उस पर बहुत से टुबर्कल और मृत गाँठें, यकृत भी अनगिनित टुबर्कलों से भरा हुआ; वायुप्रणाली-गत दो ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर बढ़ी हुईं और विषैले पदार्थ के सहित। दोनों फेफड़े अनगिनित टुबर्कलों से भरे हुए जो आकार में बाजरे से लेकर चावल के बराबर थे।

टोली ५ मार्मट सं० ७६६

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाई गई।	९	१ १/३
२१ ,,	टीका लगा भाग कुछ सूजा हुआ।	८	२ ३/४
२८ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	८	१ १/३
४ नवंबर	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर।	८	१/८
१२ ,,	दाहिनी वंक्षण-ग्रंथि नाशदाने के बराबर और बाईं सेम के बीज के आकार की; टीका लगा भाग नाश-दाने के बराबर।	८	१/२
१९ ,,	वंक्षण-ग्रंथियाँ पहले से बढ़ी हुई न थीं।	८	५/८
२५ ,,	टीका लगा भाग नाशदाने के बराबर।	८	३/४
४ दिसंबर	उदर का ऊपरी भाग फूला हुआ, दोनों कक्ष-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	८	१

टोली ५ मार्मट सं० ७६६

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१३ दिसंबर	टीका लगे भाग का कठोर हिस्सा २ शतांश मीटर।	८	२$\frac{५}{८}$
२२ ,,	टीका लगाने के उन्हत्तर दिन बाद मारा गया।	८	

चीर फाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर और विषैले पदार्थ के सहित। ग्रीवा की आठ लसीका ग्रंथियाँ। प्लीहा बीस गुनी बढ़ी हुई और बढ़े हुए क्षय के सहित। यकृत इतना बढ़ा हुआ नहीं पर उसकी सतह पर थोड़ी सी भूरी याक्ष्मिक गाँठें। फेफड़ों पर विशेष कर आगे की तरफ बाजरे के बराबर थोड़े से टुबर्कल और पीछे की सतह पर उतने बड़े दस से अधिक टुबर्कल देखने में आए।

टोली ५ मार्मट सं० ५३९

तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	१०	$\frac{१}{२}$
२१ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-	९	२$\frac{५}{८}$

टोली ५ मार्मट सं० ५३६

तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तो
	ग्रंथियाँ छूकर मालूम की जा सकती थीं।		
२८ अक्तुबर	टीका लगा भाग सेम के बीज के बराबर।	६	३ ३/४
४ नवंबर	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	६	१ १/८
१२ ,,	टीका लगे भाग से पीव निकल रहा था।	६	१ १/३
१६ ,,	दाहिनी वंक्षण नाशदाने के बराबर और बाँई सेम के बीज के बराबर।	६	१
२५ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	६	१ १/३
४ दिसंबर	उदर का बढ़ना आरंभ हो गया था—ख़ासकर ऊपरी भाग में।	६	१
१३ ,,	दाहिनी कक्ष-ग्रंथि सेम के बीज के बराबर, टीका लगे भाग का कठोरपन कुछ कम, परंतु पीव अभी निकल ही रहा था।	६	३/४
२२ ,,	टीका लगाने के उन्हत्तर दिन बाद मरा	८	२ १/३

चीर फाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर और विषैले पदार्थ सहित; टीका लगे पर आधा इंच चौड़ी सूजन और विषैला पीव; प्लीहा और यकृत बहुत बढ़े हुए और अनगिनत टुबर्कलों के सहित जो चावल से लेकर बाजरे तक के आकार के थे; फेफड़ों की बाहरी और भीतरी सारी सतह पर बहुत से टुबर्कल, फुप्फुसीय और पार्श्विकीय फुप्फुसावरक के बीच उत्कट सौत्रिक मिलन और उर:कोष में बहुत सा प्रस्राव।

मृत्यु का कारण—याक्ष्मिक फुप्फुसावरक-शोथ।

टोली ६ मार्मट सं० ६३२

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया	१०	$१\frac{१}{८}$
२१ ,,	टीका लगा भाग और दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ छूकर मालूम की जा सकती थीं	१०	$\frac{१}{२}$
२८ ,,	टीका लगा भाग नाशदाने के बराबर, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर।	१०	
४ नवंबर	बाईं वंक्षण-ग्रंथि सेम के बीज के बराबर और दाहिनी मटर के बराबर।	९	$३\frac{५}{६}$

टोली ६ मार्मट सं० ६३२

प्राणायाम प्रयुक्त

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१२ नवंबर	टीका लगा भाग दच्छिणी सुपारी के बराबर दोनों, वंच्तण-ग्रंथियाँ सेम के बीज के आकार की।	८	२$\frac{२}{३}$
१६ ,,	दाहिनी कच्त-ग्रंथि मटर के बराबर	८	२$\frac{५}{८}$
२५ ,,	टीका लगा भाग दच्छिणी सुपारी के बराबर और दोनों वंच्तण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर।	८	२$\frac{३}{४}$
४ दिसंबर	टीका लगा भाग पहले के ही समान	८	२$\frac{५}{८}$
१३ ,,	उदर और विशेषकर यकृत के ऊपर का भाग फूला हुआ, टीका लगा भाग और वंच्तण-ग्रंथियाँ पहले की जैसी।	८	१$\frac{१}{३}$
२३ ,,	टीका लगाने के सत्तर दिन के बाद मारा गया।	८	$\frac{३}{४}$

चीड़ फाड़—दोनों कच्त-ग्रंथियाँ सेम के बीज के आकार की। प्लीहा प्राय: सामान्य से बीस गुनी बड़ी और उस पर बाहर और भीतर बहुत से टुबर्कल और मृत गाँठें। यकृत में बढ़ा हुआ च्तय दिखाई देता था। अंत्रिकला में की ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर और विषैले पदार्थ के सहित। दोनों

फेफड़ों में बढ़ा हुआ क्षय—सारी सतह बाजरे से लेकर चावल तक के बराबर टुबर्कलों से भरी हुई।

टोली ६ मार्मट सं० ७८१

तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
१४ अक्तुबर	टीका लगाया गया।	९	३$\frac{५}{६}$
२१ ,,	टीका लगा भाग कुछ सूजा हुआ।	९	२$\frac{५}{८}$
२८ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ मटर के बराबर	८	३$\frac{५}{६}$
४ नवंबर	टीका लगे भाग पर नाशदाने के बराबर पीव जमा हुआ।	८	२$\frac{३}{४}$
१२ ,,	दाहिने वंक्षण-भाग में सेम के बीज के बराबर दो सूजी हुई ग्रंथियाँ।	८	३$\frac{१}{४}$
१९ ,,	टीका लगे भाग पर जमा हुआ पीव बढ़ गया था, दाहिनी वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर और बाईं सेम के बीज के बराबर।	८	१$\frac{१}{३}$
२५ ,,	दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ नाशदाने के बराबर और दाहिनी कक्ष-ग्रंथि मटर के बराबर।	८	१$\frac{१}{४}$

टोली ६ मार्मट सं० ७८१
तुलना के लिये

तारीख		वजन	
		छटाँक	तोले
४ दिसंबर	टीका लगे भाग से पीव निकल रहा था।	८	१⅓
१३ ,,	टीका लगा भाग कुछ छोटा हो गया था, दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर।	८	२⅝
२२ ,,	टीका लगाने के सत्तर दिन बाद मारा गया।	८	३⅛

चीर फाड़—दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ दक्षिणी सुपारी के बराबर और विषैले पदार्थ सहित। दोनों कक्ष-ग्रंथियाँ मटर के बराबर; प्लीहा लगभग बीस गुनी बढ़ी हुई और उस पर बहुत से टुबर्कल और मृत गाँठें; यकृत भी बहुत बढ़ा हुआ और उसके भीतर और बाहर भी टुबर्कल और मृत गाँठें पाई गईं; ग्रीवा की दस से अधिक ग्रंथियाँ मटर के बराबर और दानेदार तंतु सहित; दो वायुप्रणाली-गत ग्रंथियाँ सेम के बीज के बराबर और बीच में विषैला पदार्थ, फेफड़ों पर भी अनगिनित टुबर्कल और मृत गाँठें और उनमें पशु सं० ६३२ से बढ़ी हुई क्षय-क्रिया।

इन प्रयोगों से यही सारांश निकलता है कि उन पशुओं के फेफड़ों पर, जिनसे प्राणायाम कराया गया था उनकी अपेक्षा जो तुलना के लिये छोड़े गए थे, क्षय की क्रिया कम बढ़ी हुई थी। पहली टोली में मार्मट सं० १०७१ के फेफड़ों की भीतरी और बाहरी सतह पर कहीं एक भी टुबर्कल नहीं था। पर उसकी तुलनावाले मार्मट के फेफड़ों की सतह पर चौदह टुबर्कल थे और थोड़े से फेफड़ों के बीच से काट पर भी। इस दूसरे के टीका लगाने के ३६ दिन बाद मरने पर पहला मारा गया था। इससे स्पष्ट है कि इतने दिनों तक प्राणायाम ने फेफड़ों के क्षय के व्यापार को रोक रखा था।

दूसरी टोली में मार्मट सं० १२१४ टीका लगाने के चवालीस दिन बाद मारा गया। उसके दाहिने फेफड़े की सतह पर टुबर्कल नहीं थे, हाँ उसी फेफड़े के निचले भाग से काट की सतह पर थोड़े से टुबर्कल दिखाई देते थे और बाएँ फेफड़े पर भी बाजरे के बराबर लगभग दस टुबर्कल थे, जब कि सं० ८९७ के फेफड़ों की सतह पर तीस से अधिक टुबर्कल थे।

और सब टोलियों में प्राणायामवाले पशुओं में तुलनावाले पशुओं की अपेक्षा क्षय का व्यापार कम उन्नत था।

प्राणायामवाले पशुओं में सबसे उन्नत क्षय-व्यापार छठी टोली के सं० ६३२ के फेफड़ों में दिखाई दिया था पर तुलनावाले पशु सं० ७८१ के फेफड़ों में क्षय-व्यापार इससे भी बढ़ा हुआ था।

पहली टोली का तुलना-पशु सं० १२२५ यान्त्रिक उदर-कला-शोथ के कारण मरा और पाँचवीं का तुलना-पशु सं० ७३९ यान्त्रिक फुप्फुसप्रदाह के कारण, परंतु जिन पशुओं पर प्राणायाम का प्रयोग किया गया था उनमें से किसी की भी मृत्यु इस प्रकार नहीं हुई।

चौथी टोली के तुलना-पशु सं० ९६५ की पाँचवीं दाहिनी पसली के भीतर की ओर विषैले पदार्थ-युक्त दो फुड़ियाँ हो गई थीं जो आकार में सेम के बीज के बराबर थीं। किंतु उसी टोली के प्राणायामवाले पशु को ऐसा कुछ नहीं हुआ।

अब वजन की तुलना करनी चाहिए। चौथी टोली में सं० १०८७ के वजन में तुलना-पशु सं० ९६५ के वजन की अपेक्षा कमी कम हुई। पर और सब टोलियों के प्राणायाम-वाले पशुओं के वजन में अधिक कमी हुई और तुलना-वालों के वजन में कम। तथापि प्राणायामवाले पशु औरों से फुर्तीले और बलशाली दीखते थे।

कभी, किंतु किसी विरले ही वक्त ऐसा भी हो जाता है कि क्षय के कीटाणुओं को टीके के द्वारा शरीर में प्रवेश कराने के चालीस-पचास दिन तक पशु के फेफड़ों, प्लीहा या यकृत में क्षय-व्यापार के लक्षण नहीं देख पड़ते। किंतु इन प्रयोगों में जैसा सारिणियों से पता चलता है, टोली १ के पशुओं को छोड़कर ऐसा एक भी न था जिसके यकृत, प्लीहा

या दोनों वंक्षण-ग्रंथियाँ क्षय-व्यापार से मुक्त हों। और प्राणायामवाले तथा तुलनावाले पशुओं के फेफड़ों के सिवाय और इंद्रियों में क्षय-व्यापार की मात्रा में कोई स्पष्टांकित अंतर नहीं दिखाई देता था।

किंतु जिन पशुओं पर प्राणायाम का प्रयोग किया गया था उन एक ही के फेफड़ों और अन्य इंद्रियों में अंतर साफ था, पर तुलना के पशुओं में अंतर न दिखाई देता था।

जिन पशुओं ने शांति से प्राणायामोपचार करने दिया उनके फेफड़ों में क्षय उतना बढ़ा हुआ नहीं था जितना उनके फेफड़ों में जिनसे कठिनता से प्राणायाम कराया गया। उदाहरण के लिये, पाँचवीं टोली के सं० ७६६ ने कोई प्रतिरोध नहीं किया; उसके फेफड़ों में क्षय-व्यापार उतना बढ़ा हुआ नहीं था जितना सं० ६३२ के फेफड़ों में जो उपचार के आदि से अंत तक बेतरह छटपटाता रहा।

इन प्रयोगों से मुझे वह सफलता नहीं मिली जिसकी मुझे आशा थी, फिर भी यह मुझे स्पष्ट दीख गया कि प्राणायाम के दैनिक प्रयोग से फेफड़ों में का क्षय-व्यापार किसी मात्रा तक अवश्य रोका जा सकता है।

इन प्रयोगों ने मेरी इस सम्मति को बल प्रदान किया है कि यदि हम नित्य प्रति शाम सुबह दस मिनट प्राणायाम का अभ्यास किया करें तो यक्ष्मा की पहुँच से बाहर हो जायँ।

मन पर प्राणायाम का प्रभाव

कहा जा चुका है कि मन पर प्राणायाम का प्रभाव शांति-दायक होता है। इस तथ्य को अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। दो सहस्र वर्ष पूर्व बुद्ध को पता लगा था कि निश्चेष्ट बैठने से मन शांत होता है *। इस स्थिति को उन्होंने 'पद्मासन' संज्ञा दी थी। पद्मासन का अभ्यास करते समय शरीर सीधा और निश्चेष्ट रहता है। बुद्ध भगवान् प्रति दिन उसका अभ्यास करते थे और अपने मत के साथ साथ उसका भी प्रचार करते थे।

ईसा मसीह अपने मन को शांत स्थिति में रखकर नित्य परमात्मा का भजन किया करते थे। कनफूची और उनके शिष्य 'सीज़ा' का अभ्यास किया करते थे जो पद्मासन की ही एक सुधरी हुई विधि है। सीज़ा चीनी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है शांत होकर बैठना। इसमें शरीर की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही होती है जैसी पद्मासन में होती है।

इन बातों से यह समझ में आ सकता है कि मन की दशा और शरीर की स्थिति में बड़ा घना संबंध है। यह प्रतीत

---

* पहले लिख चुके हैं कि डा० ओटेब का यह मत कि बुद्ध पद्मासन के आविष्कर्ता थे गलत है। पद्मासन का आविष्कार बुद्ध के समय से बहुत पहले हो चुका था।—पी०द०ब०।

होता है कि जब तक शरीर की स्थिति दृढ़ नहीं होती तब तक मन शांत नहीं हो सकता। शरीर की स्थिति और श्वास-व्यापार के बीच भी निकट संबंध है, यह बात भली भाँति विदित है; और वैसे ही श्वास-व्यापार और नाड़ी-स्फुरण के बीच भी। इसी लिये बहुत से ऋषि मुनि अपने मनःशिक्षण के निमित्त अपने श्वास-व्यापार और नाड़ी-स्फुरण पर भी उतना ही ध्यान देते थे जितना शारीरिक स्थिति पर।

साधारण नियम यह है कि यदि मन को शांत रखना हो तो शरीर, श्वास-व्यापार और नाड़ी-स्फुरण को भी शांत रखना चाहिए। इसके विपरीत श्वास-व्यापार और स्फुरण को नियमशील रखने के लिए मन को शांत रखना चाहिए।

मानसिक दशा और नाड़ी-व्यापारों के बीच के संबंध पर फिर विचार किया जायगा, पहले इंद्रिय-व्यापार शास्त्र की दृष्टि से वात-संस्थान और इंद्रियों के बीच के संबंध पर विचार कर लेना चाहिए। हाथ की त्वचा पर सुई चुभाने से पीड़ा का अनुभव होता है। यह पीड़ा क्यों मालूम होती है? क्योंकि हाथ के नाड़ी-सूत्रों का मस्तिष्क में के नाड़ी-केंद्र से संबंध है। इसी नाड़ी-केंद्र में पीड़ा का ज्ञान होता है। सुतरां, यदि कोई नाड़ी-सूत्र या नाड़ी-केंद्र अपने उचित व्यापार को खो बैठे तो हाथ के उनसे संबंध रखनेवाले भाग पर सुई चुभाने से कुछ भी पीड़ा नहीं मालूम होगी।

दृष्टि की इंद्रिय पर विचार करने से भी यही बात ज्ञात होगी। आँखों के नाड़ी-सूत्रों या मस्तिष्क में के चाक्षुष नाड़ी-केंद्र के उचित व्यापार के नष्ट हो जाने से दिखाई देने में स्वस्थ होने पर भी आँख से कुछ सुझाई नहीं दे सकता।

अब मानसिक दशा और नाड़ी-व्यापारों के संबंध पर विचार करना चाहिए। किसी फूल को देखने से पहले उस फूल का हमें विचार होता है, तब हमें अनुभव होता है कि वह बहुत सुंदर है, फिर हमें ख़याल आता है कि पिछले वर्ष ये फूल ऐसे अच्छे नहीं खिले थे—इस साल इनका बड़ा ही दिव्य विकास हुआ है और अंत में हमारा जी करता है कि फूलों की एक डाली खरीद लें। यह सब काम आँखों के नाड़ी-सूत्रों या मस्तिष्क में के चाक्षुष नाड़ी-केंद्रों के ही द्वारा नहीं होता बल्कि मस्तिष्क में के भिन्न भिन्न नाड़ी-केंद्रों के संयुक्त व्यापारों का फल है। ज्ञान, विचार, स्मरण, गति आदि केंद्रों के व्यापारों के चाक्षुष नाड़ी-व्यापारों के साथ मेल होने से ऐसा होता है। हमारे प्रति दिन के काम-काज इन भिन्न भिन्न नाड़ी-सूत्रों के मिलकर काम करने पर ही निर्भर रहते हैं। ये नाड़ी-केंद्र बड़े महत्त्व के हैं। अभाग्यवश बहुत से रोगों के कारण इनमें गड़बड़ी हो जाया करती है। आज जो चतुर है वही, पक्षाघात का आक्रमण होने के बाद, घोर मूर्ख हो जा सकता है। कारण यह है कि इस बीमारी से मस्तिष्क में के महत्त्वपूर्ण नाड़ी-केंद्र नष्ट हो जाते हैं। इसी

तरह क्षय से पीड़ित होने पर एक आशावादी भी निराशावादी हो जाता है। क्षय-जन्य टौक्सिन विष के कारण तथा शरीर को काफी पुष्टि न मिलने से क्षयरोगी के मस्तिष्क में के नाड़ी-केंद्रों की इंद्रियाँ निर्बल पड़ जाती हैं।

नाड़ी-केंद्र नाड़ी-सेलों के समूहों से बने होते हैं। मन इन्हीं इंद्रियों में रहता है। इसलिये इनके निर्बल पड़ने या रुग्ण होने से मन भी निर्बल पड़ जाता है या बीमार हो जाता है। बहुत से लोगों का, खासकर नाड़ी-दौर्बल्य के रोगी युवकों का खयाल होता है कि नाड़ी-दौर्बल्य से केवल वात-संस्थान ही निर्बल होता है। परंतु सच बात यह है कि नाड़ी-दौर्बल्य सिर्फ वात-संस्थान का ही रोग नहीं है, बल्कि इसमें शरीर की सभी इंद्रियाँ कमजोर पड़ जाती हैं। इसी लिये नाड़ी-दौर्बल्य का वह रोगी जो नाड़ी-विकारों को दूर करने के लिये किस्म किस्म की दवाएँ करता रहता है और सारे शरीर को बलिष्ठ बनाने का यत्न नहीं करता, नीरोग नहीं हो सकता। अब तक बहुत से लोगों का विचार है कि मानसिक रोगों का रोगों में शुमार ही नहीं है। यह विचार भयावह है। मानसिक रोग यथार्थ रोग हैं। उनका स्थान नाड़ी-केंद्र और उनके सेल हैं।

अगर व्यवच्छेद करके मानसिक रोगी के मस्तिष्क की जाँच करें तो उसके नाड़ी-केंद्रों में बड़ी अदल-बदल पाएँगे। मानसिक प्रभावों से शरीर का निर्बल होना अक्सर देखा ही जाता है। किसी गहरे मानसिक धक्के से अथवा बड़े शोक

से शारीरिक रोग हो जा सकता है। सोचनेवाले सोच सकते हैं कि ऐसी दशा में अयथार्थ से यथार्थ रोग पैदा हुआ है। लेकिन वास्तविक बात यह है कि शोक तथा धक्के का अनुभव नाड़ी-सेलों को होता है जो यथार्थ पदार्थ हैं, और धक्के के कारण को ज्ञानेंद्रियों से मस्तिष्क में पहुँचानेवाले नाड़ी-सूत्र भी वास्तविक पदार्थ हैं।

यदि कोई ऐसा मनुष्य मिले जिसकी जिह्वा, त्वचा, आँख, कान, नाक आदि का नाड़ी-व्यापार नष्ट हो गया हो तो उसे देखिए। आप देखेंगे कि उसके न विचार उदय होते हैं और न वह विकारों को ग्रहण कर सकता है; उसे न हर्ष होता है न विषाद, न उसे किसी चीज से आश्चर्य होता है और न किसी से भय। नाड़ी-व्यापार के नष्ट होने की आरंभिक दशा में तो यह भी हो सकता है कि भूख आदि स्वाभाविक इच्छाओं से अथवा पुरानी स्मृतियों से प्रेरित होकर उसका मन कुछ मात्रा तक काम कर सके। परंतु बाहरी दुनिया से उसके मन को कोई उत्तेजना न मिलने के कारण उसकी मानसिक कर्मण्यता प्रति दिन क्षीण होती जाती है और अंत में बिल्कुल ही बंद हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि मानसिक व्यापार भी शारीरिक व्यापार ही है। अंतर इतना ही है कि शारीरिक व्यापार फेफड़ों, हृदय, आमाशय, अँतड़ियों, टाँगों और हाथों के द्वारा होता है और मानसिक व्यापार नाड़ी-केंद्रों के इन सब इंद्रियों और अवयवों पर शासन करनेवाले नाड़ी-सेलों के द्वारा।

इसलिये अगर नाड़ी-सेलों का व्यापार क्षीण हो जाय अथवा नाड़ी-केंद्रों के व्यापार का समष्टि रूप मन किसी रोग से अाक्रांत हो जाय तो शरीर की और सब इंद्रियों और अवयवों का व्यापार भी क्षीण हो जाता है। दूसरी ओर इन इंद्रियों और अवयवों के रुग्ण होने से नाड़ी-केंद्रों का व्यापार अच्छी तरह नहीं होता और मन प्रमित दशाओं में नहीं रह सकता। यह बात हम क्षय आदि के रोगियों के उदाहरण में देख ही चुके हैं। जिसके हाथ, टाँग या अन्य कोई अवयव नहीं होता उसके विषय में भी यही बात होती है। इन भागों में होनेवाली सनसनाहटों का तो वह अनुभव कर ही नहीं सकता पर साथ ही साधारणतः किसी भी काम को वह उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकता जैसा कोई दूसरा स्वस्थ आदमी। फलतः नाड़ी-केंद्रों के व्यापार में कुछ कमी आ जाती है। इससे मन में भी परिवर्तन हो जाता है। एक यावनी कहावत है कि स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में रहता है। यह कहावत सर्वांश में सत्य है और वैज्ञानिक रूप से सिद्ध की जा सकती है। इसलिये यदि हम स्वस्थ मन की इच्छा रखते हों तो हमें अपना शरीर स्वस्थ रखना चाहिए। अगर हम प्रसन्न रहना और मन को शांत रखना चाहें तो हमें अपना शरीर भी शांत रखना चाहिए।

अब देखना चाहिए कि मानसिक और शारीरिक दशा का आपस में क्या संबंध है। कह ही चुके हैं कि मन केंद्रित

स्नायवेंद्रियों का सम्मिलित व्यापार है जो नाड़ी-सेलों से बनी होती हैं। इसलिये नाड़ी-सेलों के दृढ़ हुए बिना मन भी दृढ़ नहीं हो सकता; भूचाल से हिले हुए मकान के भीतर का असबाब भी हिल जाता है।

इसी तरह शरीर, श्वासव्यापार और नाड़ी-स्फुरण के शांत हुए बिना केंद्र-नाड़ियाँ भी शांत नहीं हो सकतीं। क्योंकि श्वासव्यापार, शरीर या नाड़ी-स्फुरण के अनियमित होने से रक्त-संचार भी अनियमित हो जाता है और केंद्रित नाड़ी-सेलां के रक्त-संचार पर निर्भर होने से उनमें भी अव्यवस्था हो जाती है। सो, मन को दृढ़ रखने के लिए शरीर को दृढ़ रखना आवश्यक है। इसी लिये ऋषि-प्रणीत योग में शरीर की स्थिति का बड़ा ध्यान रखा जाता है।

सैगो आधुनिक जापान का एक महापुरुष हो गया है। उसकी जीवनी में लिखा है कि जब वह ओकीराबु नामक एक छोटे से द्वीप में निर्वासित था तो वह सदैव शांत होकर गहन चिंतन की अवस्था में बैठा रहता था। उस समय लिखी हुई उसकी एक कविता का भाव यह है—

> मेरा मन न संपत्ति से विचलित होता है और न मृत्यु से। दीवाल की ओर मुँह करके और अपने हृदय का नियमन कर मैंने पिछले चालीस वर्षों में क्या सबक सीखा है?—दृढ़-चित्त होकर कारागार में बैठना।

इससे सिद्ध है कि वह पद्मासन के एक प्रकार सीजा का अभ्यास किया करता था। गेक्कन, जूडो, अखाड़ेबाजी और कुछ पहलवानी खेल आदि मनःशिक्षण की कई विधियाँ भी जापान में प्रचलित हैं। इनमें व्यायाम और परिश्रम के बीच मन का शिक्षण होता है और जजन और सीजा शांत अवस्था में उसका शिक्षण करते हैं। जजन और सीजा से धीरे धीरे मन का शिक्षण होता है, यहाँ तक कि अंत में अनहोनी बातें भी हमें न आश्चर्य में डाल सकेंगी और न क्षुब्ध कर सकेंगी।

जजन कैसे किया जाता है, यह मैं पिछले किसी अध्याय में बता चुका हूँ। उसमें शरीर सीधा और शांत रखा जाता है। सात वर्ष से मैं दस मिनट के प्राणायाम के साथ साथ अपनी ही एक विधि का नित्य सुबह शाम अभ्यास करता आ रहा हूँ। यह विधि प्राणायाम के वैज्ञानिक प्रभावों को दृष्टि में रखकर संशोधित जजन का ही एक प्रकार है। मेरी वह विधि यह है—

(१) शरीर की स्थिति वैसी ही हो जैसी जजन में होती है।

(२) शरीर को जितना हो सके शांत रखो।

(३) आठ सेकिंड तक एक शांत और दीर्घ निःश्वास लो।

(४) निःश्वसित वायु को दस सेकिंड तक फेफड़ों में रोक रखो।

(५) छः सेकिंड दीर्घ किंतु शांत प्रश्वास छोड़ने में लगाओ।

(६) साथ ही पेड़ू को दबाए रखो और अगर हो सके तो प्राणायाम से उसे हिलने डुलने न दो।

अब मैं ऊपर लिखे प्रत्येक नियम को वैज्ञानिक दृष्टि से समझाता हूँ। पहले और दूसरे नियम पर तो विचार हो ही चुका है। तीसरे के अनुसार आठ सेकिंड तक दीर्घ-निःश्वास लेने से फेफड़े फूल उठते हैं और वक्षःस्थल का भार घट जाता है। इस समय मस्तिष्क, उदर आदि भागों से बहकर बहुत सा रक्त उरःकोष में आ जाता है। इतना रक्त वहाँ और किसी समय नहीं आता। इस प्रकार इस समय मस्तिष्क में प्रमित श्वास-व्यापार की अपेक्षा कम रक्त रह जाता है और केंद्रित-नाड़ी-सेलों के चारों ओर की रक्त-वाहिनी केशिकाएँ सिकुड़ जाती हैं जिससे इन केशिकाओं का केंद्र-नाड़ी सेलों पर कोई दबाव नहीं पड़ता।

फूली हुई रक्तवाहिनी केशिकाओं का दबाव केंद्र-नाड़ी-सेलों को उत्तेजना देता है, यह मामूली बात है। मस्तक की ओर बहुत से रुधिर के दौड़ आने से बेचैनी मालूम होती है और दिमाग कुछ गड़बड़ हो जाता है। हाथ-पाँव की त्वचा पर तक रक्त की अधिकता होने से बेचैनी मालूम होती है दिमाग तो बहुत नाजुक चीज है। जहाँ रक्त की अधिकता हो उस भाग पर ठंडी पट्टी बाँधने से बेचैनी और पीड़ा दूर हो जाती है। आठ सेकिंड का दीर्घ निःश्वास भी सिर के लिये ठंडो पट्टी का ही काम देता है। उससे मन शांत हो जाता है। परंतु यह याद रहे कि दीर्घ निःश्वास शांतिपूर्वक धीरे धीरे लेना चाहिए।

निःश्वास की वायु को दस सेकिंड तक फेफड़े में रोक रखना पहले-पहल कठिन मालूम होगा। इन दस सेकिंडों के अंदर दिमाग में निःश्वास के समय से भी कम रुधिर रहता है। इसलिये इस समय रक्तवाहिनी केशिकाओं का केंद्र-नाड़ी-सेलों पर सबसे कम दबाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त श्वास-कर्म के रुके रहने से सारा शरीर विश्रांत रहता है जिससे मन को भी शांत रहना पड़ता है।

साँस को रोकने से मन कैसा शांत और एकाग्र होता है इसका सबसे अच्छा दृष्टांत चाँदमारी में मिलता है। हर बार गोली चलाने से पहले कुछ सेकिंड तक साँस रोक रखने से निशाना अच्छा बैठता है। एक लेफ्टनेंट के सिपाही चाँद-मारी के मैच में कभी नहीं जीतते थे। एक बार मैच में शामिल कराने से पहले दो महीने तक उसने उनसे शाम सुबह प्राणायाम कराया और वे जीत गए और तब से बराबर वही जीतते रहे। यह रुचिकर कहानी मैंने उसी लेफ्टनेंट से सुनी।

यह हम स्वयं प्राणायाम करके देख सकते हैं कि आरंभ के अठारह (आठ निःश्वास के और दस हवा को फेफड़ों में रोकने के) सेकिंडों में मन इस प्रकार बिल्कुल शांत रहता है कि मानो मानसिक जीवन का अवसान ही हो गया हो।

अंत के जो छः सेकिंड दीर्घ प्रश्वास छोड़ने में लगते हैं, उनमें वक्षःस्थलगत भार बढ़ जाता है, फुप्फुस सिकुड़ जाते हैं और उरःकोष में का रक्त मस्तिष्क और शरीर के अन्य भागों

की ओर बह जाता है। इससे मस्तिष्क में रक्त का परिमाण बढ़ जाता है और रक्तवाहिनी केशिकाएँ फूलने लगती हैं जिससे वहाँ के नाड़ी-सेलों पर बड़ा दबाव पड़ता है। इसी कारण प्रश्वास छोड़ते समय दिमाग काँपता सा मालूम होता है। इसके अलावा आरंभ के अठारह सेकिंड तक वक्षःस्थल और फुप्फुस फूले हुए रहते हैं और स्वभावतः अपनी पहले की स्थिति में जाना चाहते हैं। बहुत धीरे धीरे प्रश्वास छोड़कर उन्हें उस स्थिति में लाने से बहुत बेचैनी होगी। अतः निःश्वास से प्रश्वास में कम समय लगाना चाहिए। इसी लिये मैंने छः सेकिंड के प्रश्वास का नियम रखा है।

प्राणायाम करते समय सदैव उदरगत भार को बढ़ाने का ध्यान रखना चाहिए जिससे वहाँ रक्त कम रहे। दो हजार वर्ष पहले इस बात का पता लगा था कि उदरकोष को सिकुड़ा और फुलाकर साँस लेने से शरीर स्वस्थ रहता है। कहा ही जा चुका है कि उदरकोष में हमेशा बहुत सा रक्त बेकाम पड़ा रहता है और उसकी प्राकृतिक स्थिति ऐसी कुछ है कि वहाँ के रक्त-संचार में शरीर के और भागों की अपेक्षा बहुत जल्दी गड़बड़ी हो जाती है। उदरगत भार को बढ़ाने से वहाँ का बहुत सा रक्त बहकर न्यून भारवाले भागों की ओर चला जाता है और वहाँ प्रमित अवस्था से कम रक्त रह जाता है। इससे रक्त-संचार भी वेग से होने लगता है। इस प्रकार उदर-कोष से निकला हुआ रक्त शरीर के और भागों में संचार कर

उनके तंतुओं को पुष्ट कर देता है। इसी आधार पर बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि काम करते समय उदर को दृढ़ता से दवाने से थकान नहीं मालूम होती।

उदर को दृढ़ता से दबाने से उदर की सब इंद्रियाँ अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाती हैं और हिल-डुल नहीं सकतीं। साथ ही इससे शरीर के और सब भाग सीधे और शांत रखे जाते हैं इसलिये मन भी शांत रहता है।

मेरी इस विधि का आसन नौसिखुओं और खासकर यूरोपवासियों के लिये बहुत कठिन होगा। जो ऐसा आसन न बाँध सके वह आराम से कुर्सी पर बैठकर शरीर को सीधा कर ऊपर लिखे नियमों के अनुसार प्राणायाम करे। परंतु इससे पहले खुली खिड़की के सामने या बगीचे में पाँच से दस मिनट तक अवश्य साधारण प्राणायाम कर लेना चाहिए।

परंतु शायद इन नियमों के अनुसार प्राणायाम करने में भी नौसिखुओं को कठिनता हो। आदत डालने से यह कठिनता दूर हो जायगी। एक दो सप्ताह तक इस प्रकार अभ्यास कर लेने से ऐसी आदत पड़ जायगी कि घड़ी देखने की भी जरूरत न रहेगी। प्राणायाम के आरोग्यदायक प्रभाव किसी भी विधि का अनुसरण करने से प्रकट हो सकते हैं। परंतु नाड़ीदौर्बल्य, आमाशय और अँतड़ियों के जीर्ण शोथ, मंदाग्नि, विबंध, रक्तकार्श्य, मोटापा, निर्बलता आदि रोगों के रोगियों के तथा उनके लिये जिन्हें पित्ताश्मरी का भय रहता

है यह विधि विशेष लाभकर है। उन्हें इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए। कई लोगों ने मेरी सलाह से इस विधि के अनुसार प्राणायाम करके लाभ उठाया है। इस विधि से शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहते हैं और मन विशेष रूप से शांत रहता है।

———

पारिभाषिक शब्द-कोष

अग्न्याशय, pancreas (मु० स्व० वर्मा) क्लोम (त्रि० ना० वर्मा)
    ग्रहणी (ग० ना० सेन)

अणुवीक्षण यंत्र, microscope
    —द्वारा परीक्षा, microscopical examination

अनागत प्रतिषेध, prophylaxis

अन्नप्रणाली, œsophagus

अप्राकृतिक प्रसार, emphysema

अस्थि-शोथ, osteomyelitis

अस्थि-विकाश, ossification
        अकाल—,premature—

आमाशय, stomach
    —और अँतड़ियों का शोथ, gastro-intestinal catarrh

इंद्रिय व्यापार-शास्त्र, physiology

उदर, abdomen
    —कला, peritoneum
    —कला का शोथ, peritonitis
    —कोष, abdominal cavity
    —छेदन, laprotomy

उपचर्मगत, subcutaneous

उपास्थि, cartilage

औक्सिजन, oxygen

औक्सिजनीकरण, oxidation

अंतर्कला, endothelium

कठोर होना, induration
कला (झिल्ली) membrane
काट, section
केशिका, capillary
कोण, angle
    अधिक—, obtuse—
    न्यून—, acute—
कोष्ठाणु, cells
कंठ, pharynx
क्षय, consumption, phthisis, tuberculosis
    फुफ्फुस का—, pulmonary—
    स्वर यंत्र का—, laryngyreal—
क्षेपक कोष्ठ, ventricle
गुर्दे (वृक्क), kidneys
गैस-विनिमय, gaseous exchange
ग्राहक कोष्ट, auricle
ग्रंथि, gland
    अंत्रिकला-स्था—, mesenterial—
    कक्ष—, axillary—
    ग्रीवागत—, cervical—
    वंक्षण—, inguinal—
घटना, phenomenon
चूने में बदलना, calcify
जीवाणु, bacteria
    —नाशी, bactricidal
    —भक्षण व्यापार, phagocytosis

जीवाणु, रोगजनक,—pathogenic—
झिल्ली (कला), membrane
    श्लैष्मिका—, mucus—
ट्युबर्कल, tubercle
    कीटाणु—, bacillus
टेंटुआ, trachea
तनाव, tension
ताप-परिमाण, temperature
तंतु, tissue
    दानेदार—, granular—
    नियोजक—, connective—
    मस्तिष्कगत—, cerebral—
    रोएँदार काष्ठ—, ciliated epithelia
धमनी, artery
धमनीय, arterial
धीरे धीरे मेहनत बढ़ाने की प्रथा, graduated labour system
नाड़ी, nerve
    —सूत्र,—fibre
    —सेल,—cells
    —केंद्र,—centre
    —दौर्बल्य, neurasthenia
    —स्फुरण, pulsation
निरोधक केंद्र, inhibitory centre
निर्वात स्थान, vacuum
निवारक, therapeutic
निवारण, therapeutix

निःश्वास, inspiration
निमोनिया के कीटाणु, pneumococci
पक्षाघात, apoplexy
पानी निकालना, taping
पाशव प्रकार, typus bovinus (ट्युबर्कल कीटाणु-कण)
पार्शुका, rib
पित्ताश्मरी, cholelithiasis
पेशी, muscle

आरी के आकार की अधः अपरा—, serratus postericus inferior—
आरी के आकार की ऊर्ध्व अपरा—, serratus postericus superior—
आरी के आकार की बृहती—, serratus magnus—
उरः कर्णमूलिका—, sternocleidomastoideus—
उरः कंठिका—, sternohyiodeus—
उरश्चुल्लिका—, sternothyroideus—
उरश्छादिनी लघवी—, pectoralis minor—
,, बृहती—, pectoralis major—
कटिचतुरस्रा—, quadratus lumborum—
कंठाकुंचनी—, constrictor pharyngis—
कृमिवच्चुलिका—, thyroarytac noideus—
चुल्लिका—, thyroideus—
डोरी हीन—, unstriated—
तालूद्वहिनी—, levator veli palatini
नासिकोद्वहिनी—, levator alae nasi—
नासारंध्रवर्तिनी पूर्वा और अपरा—, naris anterior et posterior—

पार्श्विकांतरिका अंतःस्था—, intercostales interna—
,, वहिःस्था—, reintercostales externa—
पार्श्विकोद्वहिनी लघवी और बृहती—, levator costarum brevis et longus—
पृष्ठदेशीया बृहत्तमा—, latissimus dorsi—
मुखाकुंचनी—, orbicularis oris—
मुद्राकार कृमिवदपरा—, cricoarytae noideus posterior—
वक्रोदरच्छदा अंतःस्था—, obliquus abdominis interna
,, वहिःस्था—, obliquus abdominis externa
वक्ष उदर मध्यस्था—, diaphragm—
वक्षःस्थल लंबिनी—, transversus thoracis—
विषम त्रिकोण—, scalenus—
शुंडिकास्था असंबद्धा—, azygos uvulae—
समानांतर चतुरस्रा—, trapezius—
सरल उदरच्छदा—, rectus abdominis—

पोषण नली, alimentary canal
प्रकृति विज्ञान, physics
प्रदाह (शोथ), inflammation
प्रधमन (भार), pressure
—मापक यंत्र, manometre
प्रमित, normal
प्राणायाम, deep breathing, (lit. regulation of breath)
प्लीहा, spleen
फलित, proliferated
फुफ्फुस (फेफड़े), lungs
—के शिखर, apices of the—

फुफ्फुस-प्रदाह, pneumonia (पार्श्वशूल वा क्लेदपाक)
फुफ्फुसावरक, pleura
—शोथ, pleurisy
आवृत्त फु० शो०, encysted pleurisy
फु० के ऊपर का परत, parietal pleura
बाईं ओर का कपाट, mitral valve
बीजकोष, capsule
भार, pressure
मानव प्रकार, typus humanus (क्षय के कीटाणु-कण)
मूत्राशय (वस्ति), bladder
मृत गाँठें, necrotic knots
मेरुदंड (सुषुम्ना), spinal cord
यकृत (जिगर), liver
यक्ष्मा, consumption, phthisis, tuberculosis
यावनी, Greek
रक्त रस (सीरम), serum
रक्त वमन, hæmoptysis
रक्ताधिक्य, hyperæmia
रक्ताणु, blood corpuscles
रक्ताभाव (रक्त कार्श्य), anæmia
रोग, disease
जीर्ण—, chronic—
तीव्र—, acute—
लसीका, lymph
लार, saliva
वक्षस्रोत, thoracic duct

वक्ष के बीच का भीतरी भाग, mediastinum
वक्षःस्थल, thorax
वस्ति, bladder
वात-संस्थान, nervous system
वायु प्रधारणा शक्ति, vital capacity
वायु-प्रणालियाँ, bronchi
वायु मंदिर, air vesicles (infundebulum)
वाष्पशोधित जल, di stilled water
विवर्ण कण, leucocyte
विषैला पदार्थ, caseous substance
वृक्क (गुर्दा), kidney
व्यवच्छेद शास्त्र, anatomy
व्यवच्छेदक, anatomist
व्यापार (क्रिया), function
शरीरशास्त्र, physiology
शल्य-चिकित्सक (सर्जन), surgeon
शिरा, vein
अधः महा—, vena cava inferior
अक्षकीया—, vena jugularis
कक्षगा—, axillary—
द्वार—, portal—
मस्तिष्कगा बृहती—, vagus—
श्रोणिगा—, vena iliaca communis
शोथजात प्रस्राव, inflammatory exudation
श्वास-कष्ट, dyspnœa
श्वास-क्रिया (श्वास-व्यापार), respiration

श्वासव्यापार, उदरगत—abdominal respiration
श्वासावरोध, asphyxia
सनसनाहट, sensation
सर्जन, surgeon
सौत्रिक मिलन, fibrinious adhesion
संधिवात, artithritis
सूच्याकार, conical
सेल, cell
सुषुम्ना, spinal cord
संवर्धन करना, cultivate
संवर्धन कोष, cultivative incubator
संवृद्धि माध्यम, culture media
स्तेफिलोकोकस, staphylococcus } अस्थिशोथ के कीटाणु
स्त्रेप्तोकोकस, streptococcus }
स्थिति स्थापकता, elasticity
स्नायवेंद्रियाँ, nerve organs
स्नायु (नाड़ी), nerve
स्वत्त्व शक्ति, vitality
स्वर यंत्र, larynx
स्वविकाशास्थि भाग, epiphysis
हैजे के कीटाणु, vibrio
हृदय, heart